अथ अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका

: प्रकाशक :
श्री श्रुतज्ञान प्रसारक सभा
अमदावाद-३८००१४

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित
अतएव
श्रीआत्मारामजीमहाराज कृत हिन्दी अनुवाद सहित

अथ अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका

-: संपादक :-
श्री नेमि-अमृत-देव-हेमचन्द्रसूरि शिष्य
आ. श्रीविजयप्रद्युम्नसूरि महाराज

: प्रकाशक :
श्री श्रुतज्ञान प्रसारक सभा
अमदावाद-३८००१४
संवत्-२०६४

Ath Ayogagvyvchchheddvatrishika
ed.by Acharyashri Pradyumnasuriji

प्रकाशक :
श्री श्रुतज्ञान प्रसारक सभा
अमदावाद-३८० ०१४.

आवृत्ति : २
प्रति : ३००
पृष्ठ संख्या : ४+४४
मूल्य : ४०

प्राप्तिस्थान :

जितेन्द्रभाइ कापडिया
c/o. अजंता प्रिन्टर्स
१४-बी, सत्तर तालुका सोसायटी,
पोष्ट : नवजीवन, अमदावाद-३८० ०१४.
फोन : (ओ.) २७५४५५७ (रहे.) २६६००९२६

शरदभाइ शाह
१०२, वी.टी. एपार्टमेन्ट,
काळानाळा, भावनगर, (सौराष्ट्र)
फोन : २४२६७९७

विजयभाई दोशी
सी-६०२, दत्ताणीनगर, बील्डींग नं.-३,
एस.वी.रोड, बोरीवल्ली (वेस्ट) मुंबई-४०००९२
फोन : ९३२०४ ७५२२२

मुद्रक :
किरीट ग्राफीक्स
२०९, आनंद शोपींग सेन्टर, रतनपोळ, अमदावाद-१.
मो. : ९८९८४९००९१

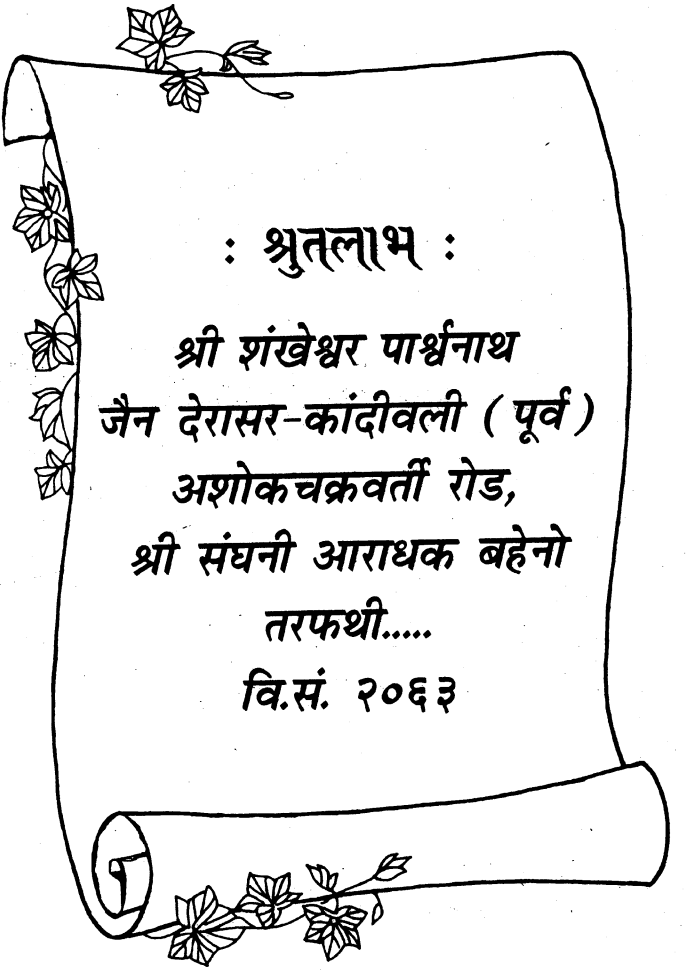

: श्रुतलाभ :

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ
जैन देरासर-कांदीवली (पूर्व)
अशोकचक्रवर्ती रोड,
श्री संघनी आराधक बहेनो
तरफथी.....
वि.सं. २०६३

આ એક ઐતિહાસિક કૃતિ છે.

આનું મહત્ત્વ આટલું જ છે પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજ. તે કાળના પરમજ્ઞાન વિશ્વાસુ પુરુષ. તેઓને જે સાધનો મળ્યા તેના આધારે અર્થ લખ્યા.

મૂળ તો **तत्त्व निर्णय प्रासाद** ગ્રંથમાં છે. તેમાંથી છૂટી આ **अयोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका** હિંદી અનુવાદ સાથે અહીં પ્રકાશિત થાય છે.

અભ્યાસીને આનંદ આવે તેવો મૂળગ્રંથ છે. રચના કલિકાલ સર્વજ્ઞ શ્રી હેમચંદ્રસૂરિ મહારાજની પછી તે અંગે કાંઈ પણ લખવાનું હોય જ નહીં.

આના પ્રકાશનથી અનેક અભ્યાસપ્રેમી જીવો એના સ્વાધ્યાય મનન, ચિંતન કરી ખૂબ ખૂબ કર્મ નિર્જરા સાધો.

વિ. સં. ૨૦૬૪
જેઠ વદિ : ૧૨
અંધેરી પૂર્વ.

એજ
પ્ર.

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित
अत्एव
श्रीआत्मारामजीमहाराज कृत हिन्दी अनुवाद सहित

अथ अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका

द्वितीयस्तंभमें यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेवका किंचिन्मात्र स्वरूप लिखा. अथ तृतीयस्तंभमें तिन यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेवमें जे जे अयोग्य बातें हैं, तिनके अयोग व्यवच्छेदरूप **श्रीमन्महावीरस्वामी स्तोत्र** लिखते हैं ।

इहां निश्चय विषमदु:षमअररूप रात्रितिमर के दूर करनेकों सूर्यसमानने, और पृथिवीतलमें अवतार लेके अमृतसमान धर्मदेशनाके विस्तारसें परमार्हत हुआ श्री कुमारपाल भूपालसें प्रवर्त्तित कराई अभयदान जिसका नाम ऐसी संजीविनी औषधिकरके जीवित करे नाना जीवोंने दीनी आशीर्वादरूप महात्म्यकल्प अर्थात् पंचम आरेपर्यंततांइ स्थिर रह नेहारा स्थिर करा है विशद (निर्मल) यश:शरीरकरके जिन्होंने, और चातुरविद्यके निर्माण करनेमें एक ब्रह्मारूप श्रीहेमचन्द्रसूरिने, जगत्में प्रसिद्ध श्रीसिद्धसेनदिवाकर-विरचित बत्तीस बत्तीसियोंके अनुसारि श्रीवर्द्धमानजिनकी स्तुतिरूप, **अयोग-व्यवच्छेद** और **अन्य योगव्यवच्छेद** नाम कियां दो बत्तीसियां पंडितजनोंके मनके तत्त्वबोध हेतुभूत रचीयां है. तिनमेंसें, प्रथम द्वात्रिंशिका गमार्थरूप है, इसवास्ते इसकी व्याख्या नही करते हैं, ऐसें श्री मल्लिषेणसूरि महाराज कहते हैं. परंतु इस कालके हमारे सरीखे मंदबुद्धियोंकों तो, प्रथम द्वात्रिंशिकाका अर्थ जानना बहुतही

कठिन हो रहा है; तथापि, शिष्यजनोंकी प्रार्थनासें, और श्रीहेमचन्द्रसूरिजीकी भक्तिके मिससें किंचिन्मात्र अर्थ लिखते हैं ।

अगम्यमध्यात्मविदामवाच्यं
वचस्विनामक्षवतां परोक्षम् ।
श्रीवर्द्धमानाभिधमात्मरूप-
महंस्तुतेर्गोचरमानयामि ॥ १ ॥

व्याख्या : (अहं) मैं हेमचन्द्रसूरि (श्रीवर्द्धमानाभिधम्) श्री वर्द्धमानं नाम भगवंतकों (स्तुतेः) स्तुतिका (गोचरम्) विषय (आनयामि) करता हूं. कैसा है श्री वर्द्धमान भगवंत (अध्यात्मविदाम्) अध्यात्मवेत्तायोंके (अगम्यम्) अगम्य है, अर्थात् अध्यात्मज्ञानीभी जिसका संपूर्ण स्वरूप नही जान सकते हैं । जो आत्माका, मनका और देहका, यथार्थ स्वरूप जानते हैं, तिनकों अध्यात्मवित् कहते हैं । तिनोंकेभी ज्ञानकरके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप अगम्य है । तथा (वचस्विनाम्) वचस्वी पंडितकों कहते हैं, मनःपर्यायज्ञानी, अवधिज्ञानी, पूर्वधर, गणधरादि सर्व शास्त्रोंका वेत्ता। ऐसें सद्बुद्धिमान् सर्व पापोंसें दूर वर्त्तनेवाले ऐसें पंडितोंके वचनों करके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप (अवाच्यम्) अवाच्य है, अर्थात् ऐसें पंडितभी जिनका संपूर्ण स्वरूप नही कह सकते हैं । क्योंकि, श्रीवर्द्धमान भगवंत अनंतस्वरूप गुणवान् है; और छद्मस्थके तो ज्ञानमेंही वे सर्वगुण नही आ सकते हैं तो, तिन सर्वका स्वरूप कथन करना तो दूरही रहा। तथा (अक्षवताम्) नेत्रोंवालोंके (परोक्षम्) परोक्ष है; यद्यपि संप्रति कालके नेत्रोंवालोंके तो भगवंतका स्वरूप देखना परोक्षही है; परंतु भगवंतके जीवनमोक्षके समयमें भी नेत्रोंवालोकेभी श्री भगवंतका स्वरूप परोक्षही था। क्योंकि, समवसरणमेंभी बिराजमान भगवंतका अनंत गुणात्मक स्वरूप, नेत्रोंवाले नही देख सकते थे । तथा कैसे है

श्रीवर्द्धमानाभिध भगवंत (आत्मस्वरूप) आत्मरूप है । आत्मा शब्दका अर्थ ऐसा है कि, अतति सततं निरंतर अवगच्छति जानता है; अत् 'सात्यतगमने' इस वचनसें, अत धातुकों गत्यर्थ होनेसें, और गत्यर्थ सर्व धातुयोंकों ज्ञानार्थत्व होनेसें । तब तो, अनवरत निरंतर जो जानें ऐसें निपातसें, आत्मा, जीव, उपयोग, लक्षण होनेसें, आत्मा सिद्ध होता है । और सिद्ध मोक्षावस्था संसारी अवस्था दानोंमेभी, उपयोगके भाव होनेकरके निरंतर अवबोधके होनेसें । जेकर निरंतर अवबोध न होवे, तब तो अजीवत्वका प्रसंग होवेगा; और अजीवको फेर जीव होनेके अभावसें. जेकर, अजीवभी जीव हो जावे, तब तो, आकाशादिकोंकोभी जीवत्त्व होनेका प्रसंग होवेगा । तब तो, जीवादि व्यवस्थाकाही भंग होवेगा । इसवास्ते, निरंतर अवबोधरूप होनेसें, आत्मा कहते हैं । अथवा, अतति सततं निरंतरं गच्छति प्राप्त होता है, अपनी ज्ञानादि-पर्यायोंकों जो, सो आत्मा है ।

पूर्वपक्ष : एसें तो आकाशादिकोंकों भी, आत्मशब्दके व्यपदेशका प्रसंग होवेगा । क्योंकि, वेभी अपनी अपनी पर्यायांकों प्राप्त होते हैं; अन्यथा अपरिणामी होनेकरके, अवस्तुत्वका प्रसंग होवेगा ।

उत्तरपक्ष : जैसें तुम कहते हो, तैसें नहीं है । क्योंकि, दो प्रकारके शब्द होते हैं । व्यत्पत्तिमात्रनिमित्तरूप और प्रवृत्तिनिमित्तरूप; तिसमें यह तो व्युत्पत्तिमात्रही है, और प्रवृत्तिनिमित्तसें तो जीवही आत्मा है। न आकाशादि अथवा, संसारी अपेक्षा नानागतियोंमें निरंतर गमन करनेसें, और मुक्तात्माकी अपेक्षाभूततद्भावसें आत्मा कहते हैं। यह आत्मा शब्दका अर्थ है । सो आत्मा, तीन प्रकारका है । बाह्यात्मा १, अंतरात्मा २, परमात्मा ३ । तिनमें जो परमात्मा है, तिसका स्वरूप ऐसा है, जो शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्म

शत्रुयोंको हणके निरूपमोत्तम केवलज्ञानादि स्वसंपद पाकरके, करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहकों विशेष जानते और देखते हैं; और परमानंदसंपन्न होते हैं; वे तेरमें चौदमें गुणस्थानवर्त्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्धस्वरूपमें रहनेसें, परमात्मा कहे जाते हैं । ऐसा परमात्मास्वरूप है, जिसका ॥ १ ॥

इस काव्यका भावार्थ यह है कि, सपाद लक्ष पंचांगव्याकरणादि साढेतीन कोटि श्लोकोंके कर्त्ता, श्री हेमचन्द्राचार्य, अपने आपको श्रीवर्द्धमान भगवंतकी संपूर्ण स्तुति करनेकी सामर्थ्य न देखते हुए, अपने आपकों कहते हैं कि, जो वर्द्धमान भगवंत परमात्मरूप है, जो अध्यात्म ज्ञानियोंके अगम्य है, जो वचस्वियोंके अवाच्य है, और जो नेत्रवालोंके परोक्ष है, तिनकों मैं स्तुतिका विषय करता हूं, यह बडाही मेरा साहस है। तब मानूं श्री वर्द्धमान भगवंत साक्षात्ही श्री हेमचंद्राचार्यकों कहते हैं कि, "हे हेमचंद्र ! जेकर तूं मेरी स्तुति करनेकों शक्तिमान् नही है तो, तूं किसवास्ते मेरी स्तुति करनेकों उद्यम करता है?" तब श्री हेमचंद्राचार्य भगवंतको मानूं साक्षात्ही कहते हैं।

स्तुतावशक्तिस्तव योगिनां न किं
गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः।
इदं विनिश्चित्य तव स्तवं वदन्
न बालिशोप्येष जनोऽपराध्यति ॥ २॥

व्याख्या :- "हे भगवन् ! (तव) तेरी (स्तुतौ) स्तुति करनेमें (किम्) क्या (योगिनाम्) योगियोंको (अशक्तिः) असमर्थता (न) नही हैं? अपितु है; अर्थात् हे भगवन् ! तेरी स्तुति करनेकी योगियोंमेंभी शक्ति नही है, परंतु तिनोंनेभी तेरी स्तुति करी है।" तब मानूं भगवान् फे..... साक्षात् श्री हेमचंद्रजीकों कहते है कि, "हे

हेमचंद्र ! योगियोंकों मेरे गुणोंमें अनुराग है, इस वास्ते तिनोंने मेरी स्तुति करी है । जो गुण रागी करेगा सो समीची नही करेगा।'' तब श्रीहेमचंद्रजी कहते है (गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः) ''गुणानुराग तो मेरा भी निश्चल है; अर्थात् हे भगवन् ! तेरे गुणोंका राग तो मेरेभी अति दृढ है । (इदम्) यही वार्त्ता (विनिश्चित्य) अपने मनमें चिंतन करके अर्थात् निश्चय करके (तव स्तवं वदन्) तेरी स्तुति कहता हुआ (बालिशःअपि) मूर्ख भी (एष जनः) यह हेमचंद्र (नअपराध्यति)अपराधका भागी नही होता है।

अथ स्तुतिकार अपनी निरभिमानता और पूर्वाचार्योंकी बहुमानता सूचन करते हैं ॥

क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था
अशिक्षितालापकला क्व चैषा ।
तथापि यूथाधिपतेः पथस्थः
स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः ॥ ३ ॥

व्याख्या—हे भगवन्! (क्व) कहां तो (महार्थाः) अति महा अर्थ संयुक्त (सिद्धसेनस्तुतयः) सिद्धसेनदिवाकरकी करी हुई-स्तुतियां, और (क्वः कहां (एषा) यह (अशिक्षितालापकला) नही सीखा है अब तक पूरा पूरा बोलनाभी जिसने, तिसके कहनेकी स्तुतिरूप कला; अर्थात् कहां श्रीसिद्धसेनदिवाकररचित महा अर्थवालिया बत्तीस बत्तीसियां, और कहां मेरे अशिक्षित आलापकी यह स्तुतिरूप कला; (तथापि) तोभी, (यूथाधिपतेः) हाथियोंके यूथाधिपके (पथस्थः) पथ मार्गमें रहा हुआ (स्खलद्गतिः) स्खलित गतिभी, अर्थात् पथसें इधर उधर गति स्खलायमान भी (तस्य) तिस यूथाधिपका (शिशुः) बालक कलम (न शोच्यः) शोचनीय नही है।

ऐसेंही श्री सिद्धसेनदिवाकर गच्छाधिप है, और मैं तिनका (बालक) बच्चा हूं। जिस रस्तेपर वे चले हैं, मैंभी तिसही रस्तेमें रहा हुआ, अर्थात् तिनकी तरहही स्तुति करता हुआ, ... स्खलायमानभी होजावुं, तोभी शोचनीय नही हूं ।

अथाग्रे श्रीहेमचंद्रसूरि अयोग व्यवच्छेदरूप भगवंतकी स्तुति रचते हैं।

जिनेंद्र यानेव विबाधसे त्वं
दुरंतदोषान् विविधैरुपायैः ।
त एव चित्रं त्वदसूययेव
कृताः कृतार्थाः परतीर्थनाथैः ॥ ४ ॥

व्याख्या— हे जिनेंद्र! (यानेव) जिनही (दुरंतदोषान्) दुरंतदूषणोंकों (विविधैः) विविध प्रकारके (उपायैः))उपायों करके (विबाधसे) तुम बाधित करते हुए हैं, अर्थात् जिन दुरंतदूषण राग, द्वेष, मोहादिकोंको नाना प्रकारके संयम, तप, ज्ञान, ध्यान, साम्यसमाधि, योग लीनतादि उपायों करके दूर करे है; (चित्रम्) मुझकों बडाही आश्चर्य है कि, (त एव) वेहीं दुरंतदूषण (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (त्वदसूययेव) तेरी असूया करकेही (कृतार्थाः) कृतार्थ (कृताः) करे हैं, अर्थात् अच्छे जानके स्वीकार करे हैं; सोही दिखाते हैं।

हे भगवन् ! प्रथम रागकों तैने दूर करा; तिस रागकोंही पर-तीर्थनाथोंने स्वीकार करा है। क्योंकि, राग का प्रायः मूल कारण स्त्री है, सो तो, तीनोंही देवने अंगीकार करी है। ब्रह्माजीने सावित्री, शंकरने पार्वती, और विष्णुने लक्ष्मी। और पुत्र पुत्रीयां साम्राज्य परिग्रहादिकी ममताभी सर्व देवोंके तिनके शास्त्रोंके कथनानुसारही

सिद्ध है। और अप्रीतिलक्षणद्वेषभी पूर्वोक्त देवोंमें सिद्ध है। क्योंकि, जो शस्त्र रखेगा सो यातो वैरीके भयसें अपनी रक्षाकेवास्ते रखेगा, यातो अपने वैरियोंको मारने वास्ते रखेगा; शंकर धनुष, बाण, त्रिशूलादि; और विष्णु चक्र, धनुष बाण, गदादि; और ब्रह्मादि तीनो देवोंने अनेक पुरुषोंकों शाप दिये महाभारतादि ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है; और शंकर विष्णुने अनेक जनोंके साथ युद्ध करे है; इत्यादि अनेक हेतुयोंसें, तीनो देव, द्वेषी सिद्ध होते हैं। और मोह, अज्ञानभी, तीनो देवादिक परतीर्थनाथोंने स्वीकार करा है। क्योंकि, जपमाला रखनेसें अज्ञानी सिद्ध होते है, जपमाला जपकी गिणती वास्ते रखते हैं, जपमालाविना जपकी गिणती (संख्या) न जाननेसें, अज्ञानिपणा सिद्ध है। और महाभारत, रामायण, शिवपुराणादि ग्रंथोके कथनसें, तीनो देव, अस्मदादिकोंकी तरह अज्ञानी सिद्ध होते हैं जैसें, शिव के लिंग का अंत ब्रह्मा विष्णुकों न मिला, इत्यादि अनेक उदाहरण है। तिससें, तीनो देव अज्ञानी सिद्ध होते हैं। तथा हास्य रति, अरति, भय, जुगुप्सा, शोक, काम, मिथ्यात्व, निद्रा, अविरति, पांच विघ्नादि दूषणभी, तीनो देवादिकों में तिनके कथनकरे शास्त्रोंसे हीं सिद्ध होते हैं।

इस वास्ते मानूं हे जिनेंद्र ! तीनो देवोंने तेरी ईर्षा करकेही पूर्वोक्त दूषण अंगीकार करे हैं। यह प्रायः जगत्में प्रसिद्धही है कि, जो निर्द्धन धनाढ्यका स्पर्धी, जब धनाढ्य की बराबरी नही कर सक्ता है, तब धनाढ्य की ईर्षासें विपरीत चलना अगींकार करता है। तैसेंही, परतीर्थनाथोंने हे भगवन्! तेरेकों सर्व दूषणोंसें रहित देखके तेरी ईर्षासें ही मानूं सर्व दूषण कृतार्थ करे हैं, यह मेरेकों बडा ही आश्चर्य है। ॥ ४ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें असत् उपदेशकपणे काव्य वछेद करते हैं।

यथास्थितं वस्तु दिशन्नधीश
न तादृशं कौशलमाश्रितोऽसि ।
तुरंगशृंगाण्युपपादयद्भयो
नमः परेभ्यो नवपण्डितेभ्यः ।। ५ ।।

व्याख्या— हे अधीश ! हे जिनेंद्र ! तूं (यथास्थितं) यथास्थित (वस्तु) वतुस्का स्वरूप (दिशन्) कथन करता हूआ (तादृशं))तैसी (कौशलं))कौशलता-चातुर्यताकों (न) नही (आश्रितोसि) आश्रित-प्राप्त हुआ है, जैसी चातुर्यताकों असद्रूप पदार्थकों, सद्रूप कथन करते हुए परवादी प्राप्त हुए हैं, अर्थात् जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आस्रव ५, संवर ६, निर्ज्जरा ७, बंध ८, और मोक्ष ९, यह नव पदार्थ है। तिनमें जो जीव है, सो ज्ञानादि धर्मोंसें कथंचित् भिन्नाभिन्न रूप है, शुभाशुभ कर्मोका कर्त्ता है, अपनेकरे कर्मोका फल अपने अपने निमित्तों द्वारा भोक्ता है, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवरूप चार गतिमें अपने कर्मोंके उदयसें भ्रमण करता है, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप साधनोंसें निर्वाण पदकों प्राप्त होता है, चैतन्य अर्थात् उपयोग ही जिसका लक्षण है, अपने कर्मजन्य शरीर प्रमाण व्यापक है, द्रव्यार्थिक नयके मतसें नित्य है, पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्य हैं, द्रव्यार्थ स्वरूपसें अनादि अनंत है, पर्यायार्थें सादि सांत है, और कर्मो के साथ प्रवाहसेंअनादि संयोग संबंधवाला है, इत्यादि विशेषणोंवाला जीव है। ॥ १ ॥

चैतन्यरहित, अज्ञानादि धर्मवाला, रूप, रस, गंध, स्पर्शादिकसें भिन्ना-भिन्न नरामरादि भवांतरमें न जानेवाला, ज्ञानावरणादि कर्मोका अकर्त्ता, तिनोंके फलका अभोक्ता, जड स्वरूप, इत्यादि विशेषणोंवाला रूपी, अरूपी, दो प्रकार का अजीव है। तिनमें परमाणुसें लेके जो वस्तु वर्ण गंध रस स्पर्श संस्थानवाला दृश्य है, वा अदृश्य है, सो सर्व रूपी

अजीव है। तथा धर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, और काल, ये चारों अरूपी अजीव है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, यह तीनों द्रव्यसें एकैक द्रव्य है, क्षेत्रसें धर्मास्ति-काय, अधर्मास्तिकाय यह दोनों लोकमात्र व्यापक है, आकाशास्तिकाय, लोकालोक व्यापक है, कालसें तीनों ही द्रव्य अनादि अनंत है, और भावसें वर्ण गंध रस स्पर्शरहित, और गुणसें धर्मास्तिकाय चलनेमें सहायकं है, और धर्मास्तिकाय स्थितिमें सहायक है, और आकाशास्तिकाय सर्व द्रव्योंका भाजन विकास देनेमें सहायक है। काल, द्रव्य सें एक वा अनंत है, क्षेत्रसे अढाइ द्वीप प्रमाण व्यावहारिक काल है, कालसें अनादि अनंत है, भावसें वर्ण गंध रस स्पर्श रहित, गुणसें नव पुराणादि करने का हेतु है। और रूपी अजीव पुद्गल रूप द्रव्य सें पुद्गल द्रव्य अनंत है, क्षेत्रसें लोक प्रमाण है, कालसें अनादि अनंत है, भावसें वर्ण गंध रस स्पर्श वाला है मिलना और विच्छड जाना यह इसका गुण है; इन पूर्वोक्त पांचों द्रव्योंका नाम अजीव है. २.

तथा पुण्य जो है, सो शुभ कर्मों के पुद्गल रूप है, जिनके संबंधसें जीव सांसारिक सुख भोगता है. ३ इससें जो विपरीत है सो पाप है. ४ मिथ्यात्व (१) अविरति (२) प्रमाद (३) कषाय (४) और योग (५) यह पांच बंध के हेतत है; इस वास्ते इनकों आस्रव कहते हैं, ५. आस्रवका निरोध जो है सो संवर है, अर्थात् सम्यग्दर्शन, विरति, अप्रमाद, अकषाय, और योगनिरोध, यह संवर है। ६. कर्मका और जीवका क्षीरनीरकी तरें परस्पर मिलना तिसका नाम बंध है। ७. बंधे हूए कर्मोंका जो क्षरणा है सो निर्ज्जरा है। ८. और देहादिकका जो ज़ीवसें अत्यंत वियोग होना और जीवका स्वस्वरूपमें अवस्थान करना तिसका नाम मोक्ष है। ९.

इन पूर्वोक्त नवही तत्त्वों का स्याद्वाद शैलीसें शुद्ध श्रद्धान करना तिसका नाम सम्यग्दर्शन है; और इनका स्वरूप पूर्वोक्त रीतिसें

जानना तिसका नाम सम्यग्ज्ञान है; और सत्तरें भेदें संयम का पालना तिसका नाम सम्यक्चारित्र है; इन तीनोंका एकत्र समावेश होना तिसका नाम मोक्षमार्ग है; जड, और चैतन्यका जो प्रवाहसें मिलाप है, सो संसार है; यह संसार प्रवाहसें अनादि अनंत है, और पर्यायोंकी अपेक्षा क्षण विनश्वर है, इत्यादि वस्तुका जैसा स्वरूप था, तैसाही, हे जिनाधीश! तैंने कथन करा है, ऐसे कथन करनेसें तैंने कोई नवीन कुशलता-चातुर्यता नही प्राप्त करी है। क्योंकि, जेसें अतीतकालमें अनंत सर्वज्ञोंने वस्तुका स्वरूप यथार्थ कथन करा है, तैसाही तुमने कथन करा है, इस वास्ते, (तुरंगशृंगाण्युपपादयद्भ्यः) घोडेके शृंग उत्पन्न करनेवालें (परेभ्यःनवपंडितेभ्यः)पर नवीन पंडितों के तांइ (नमः) हमारा नमस्कार होवे, अर्थात् जिनोंने तुरंगशृंग समान असत् पदार्थ कथन करके जगत्वासी मनुष्यांको मिथ्यात्व अंधकार संसारकी वृद्धि के हेतुभूत मार्गमें प्रवत्तन कराया है, तिनोंकेतांइ हम नमस्कार करते हैं। ते तुरंगशृंग समान पदार्थ यह है। एकही ब्रह्म है, अन्य कुछभी नही है, १. पूर्वोक्त ब्रह्म के तीन भाग सदा ही निर्मल है और एक चौथा भाग मायावान् है, २. ब्रह्म सर्वव्यापक है, ३. सक्रिय है, ४. कूटस्थ नित्य है, ५. अचल है, ६. जगत्की उत्पत्ति करता है, ७. जगत् का प्रलय करतत है, ८. ऊर्णनाभकीतरें सर्व जगत् का उपादान कारण है, ९. सदा निर्लेप सदा मुक्त है, १०. यह जगत् भ्रममात्र है, ११. इत्यादि तो वेद और वेदांत मतवालोंने तुरंगश्रृंग समान वस्तुयोंका कथन करा है ।

और सांख्य मतवालोंने एक पुरुष चैतन्य है, नित्य है, सर्वव्यापक है, एक प्रकृति जडरूप नित्य है, तिस प्रकृतिसें बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धि सें अहंकार, अहंकार सें षोडशकागण, पांच ज्ञानेंद्रिय (पांच कर्मेंद्रिय, इग्यारमा मन, और पांच तन्मात्र, एवं षोडश) पांच तन्मात्रसें पांच भूत एवं सर्व, २५ प्रकृति जडकर्त्ता है,

और पुरुष तिसका फल भोक्ता है, पुरुष निर्गुण है, अकर्त्ता है, अक्रिय है, परंतु भोक्ता है, इत्यादि सर्व कथन तुंरगशृंगकीतरें असद्रूप करा है।

नैयायिक वैशेषिक यह दोनों ईश्वर को सृष्टिका कर्त्ता मानते हैं, ईश्वर नित्य बुद्धिवाला है, सर्व व्यापक और नित्य है, ईश्वरही सर्व जीवों का फलप्रदाता है, आत्मा अनंत है परंतु सर्वही आत्मा सर्वव्यापक है, मोक्षावस्थामें ज्ञान के साथ समवायसंबंध के तूटनेसें आत्मा चैतन्य नही रहता है और तिसकों स्वपर का भान नही होता है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है।

पूर्व मीमांसावाले कहेत हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ नही है, मोक्ष नही है, वेद अपौरुषेय और नित्य है, वेद का कोई कर्त्ता नही है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है।

बौद्ध मतके मूल चार संप्रदाय है,—योगाचार (१), माध्यमिक (२), वैभाषिक (३), सौतांत्रिक (४); इनमें योगाचार मतवाले विज्ञानद्वैतवादी हैं, आत्माको नहीं मानते हैं, एक विज्ञान क्षणकोही सर्व कुछ मानते हैं; कितनेक विज्ञान क्षणोके संतान के नाश कोही निर्वाण मानते है; कितनेक शून्यवादी सर्व शून्यहीं सिद्ध करते हैं, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है।

इन पूर्वोक्त, सर्ववादियोंका कथन जिस रीतिसें तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है, सो कथन अन्य योग व्यवच्छेदक द्वात्रिंशिकावृत्ति, (स्याद्वाद मंजरी,) षट्दर्शनसमुच्चय बृहद्वृत्ति, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकर सूत्रकी लघु वृत्ति (रत्नाकरावतारिका,) बृहद्वृत्ति (स्याद्वाद रत्नाकर,) धर्म संग्रहणी, अनेकांत जयपताका, शब्दांभोनिधि, गंधहस्ति, महाभाष्य, (विशेषावश्यक,) वादमहार्णव, (सम्मतितर्क,) इत्यादि शास्त्रोंसें जानना।

इन पूर्वोक्त वादियोंने असत् वस्तुकों सत् कथन करनेमें जैसी कुशलता प्राप्त करी है, तैसी, हे जिनाधीश! तैंने नही पाई है इस वास्ते, तिन परंपडितोंकेतांइ हमारा नमस्कार होवे। इहां जो नमस्कार करा है, सो उपहास्य गर्भित है, नतु तत्वसें ॥ ५ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें व्यर्थ दयालुपणेका व्यवच्छेद करते हैं।

जगत्युध्यानबलेन शश्वत्
कृतार्थयत्सु प्रसभं भवत्सु ।
किमाश्रितोऽन्यैः शरणं त्वदन्यः
स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः ॥ ६ ॥

व्याख्या— हे भगवंत ! (जगति) जगत्में शश्वत्) निरंतर (प्रसभं) यथास्यात् तैसें हठसें (भवस्तु) तुमारे कों (कृतार्थयत्सु) जगत्वासी जीवांकों कृतार्थ करते हूआं, किस करके (अनुध्यान बलेन) अनुध्यान शब्द अनुग्रहका वाचक है, अनुग्रहके बल करके, अथात् सद्धर्मदेशनाके बल करके भव्य जीवोंके तारने वास्ते निरंतर जगत् में प्रसभसें -हठसें देशनाके बलसें जनोंकों कृता करते हुए, क्योंकि परोपकार निरपेक्ष अर्थात् बदले के उपकारकी अपेक्षा रहित जो अनुग्रह के बलसें भव्य जनोंकों मोक्षमार्गमें प्रवर्त्त करता है, इसके उपरांत अन्य कोइभी ईश्वरकी दयालुता नही है, जे कर विनाही उपदेश के दयालु ईश्वर तारने समर्थ है, तो फेर द्वादशांग, चार वेद, स्मृति, पुराण, बैबल, कुरानादि पुस्तकों द्वारा उपदेश प्रगट करना व्यर्थ सिद्ध होवेगा; इस वास्ते ईश्वरकी यही दयालुता है, जो भव्य जनोंकों उपदेश द्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करना सो, तो आप निरंतर जगत्में करही रहे हैं, ऐसे आप परम कृपालुकों छोडके (अन्यैः) अन्य परवादीयोंने (त्वदन्यः) ,तुमारेसें अन्यकों (शरणं) शरणभूत (किम्) किसवास्ते

(आश्रितः) आश्रित किया है- माना है ? कैसा है वो अन्य? (स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः) अपना मांस देने करके जो वृथा कृपालु है; आत्मा का घात, और परको अपना मांस देके तृप्त करना, यह वृथाही कृपालुका लक्षण है, क्यौंकि, ऐसी कृपालुतासें परजीवका कल्याण नही होता है, असद्धर्मोपदेशरूप होनेसें। बुद्ध का यह कहना है कि, मेरे सन्मुख कोइ व्याघ्र सिंहादिक भूखसें मरता होवे तो, मैं अपना मांस देके तिसकी क्षुधा निवारण करुं, मैं ऐसा दयालु हूं । और क्षेमेंद्रकविविरचित बोधि सत्वअवदान कल्पलतामें बोधि सत्वने पूर्व जन्मांतरमें अपना शरीर सिंहको भक्षण करवाया था ऐसा कथन है, इस वास्ते बुद्ध अपने आपकों स्वमांसके देनेसें कृपालु मानता था, परंतु यह कृपालुता व्यर्थ है ॥ ६ ॥

अथाग्रे आचार्य असत्पक्षपातीयोंका स्वरूप कहते हैं ।

स्वयं कुमार्गं लपतां नु नाम
प्रलम्भमन्यानपि लम्भयन्ति ।
सुमार्गगं तद्विदमादिशन्त
म सूयान्धा अवमन्वते च ॥ ७ ॥

व्याख्या— (असूययांधाः) ईर्षा करको जे पुरुष अंधे है वे (स्वयं) आपतो (कुमार्गं) कुमार्गको (लपतां) कथन करो! प्रबल मिथ्यात्व मोहके उदय होनेसें जैसें मद्यप पुरुष मदके नशेमें, जो चाहो सो असमंजस वनच बोलो तैसेंही मिथ्यात्वरूप धतूरेके नशेसें ईर्षांध पुरुष कुमार्ग, अर्थात् अश्वमेघ, गोमेघ, नरमेघ, अजामेघ, अंत्येष्ठि, अनुस्तरणि, मधुपर्क, मांस आदिसें श्राद्ध करना, ब्राह्मणोंके वास्ते शिकार मारके लाना, परमेश्वरकों जीव वध करके बलिका देना, मोक्ष प्राप्तकों फेर जगत्में जन्म लेना, तीर्थोंमें स्नान करनेसें सर्व

पापोंसे छूटना, काशीमें मरणेसें मोक्षका मानना, अरूपी अशरीरी, सर्वव्यापक, मुखादि अवयव रहित, ऐसें परमेश्वरकों वेदादि शास्त्रोंका उपदेष्टा मानना, अग्निमें धृतादि द्रव्योंके हवन करनेसें पवन सुधरता है, तिससें मेघ शुद्ध वर्षता है, तिससें मनुष्य निरोग्य रहते हैं, यह अग्निके हवन करनेसें महान उपकार है ऐसा मानना, वेदोंमें ईश्वरने मांस खाने की आज्ञा दीनी है, वेदमंत्र पवित्रित मांस खानेमें दूषण नही, निरंतर मांससें हवन करना, केवल क्रियासेंही मोक्ष मानना, केवल ज्ञानसेंही मोक्ष मानना, रागी, द्वेषी, अज्ञानी, कामीकों परमेश्वर कथन करना, सारंभी, सपरिग्रहीकों साधु मानना, पशुयोंकों मारना चाहिये, नही तो येह बहुत हो गए तो, मनुष्योंकी हानिकरेंगे, स्त्रीकों इग्यारह खसम करने, ऐसे नियोगकी ईश्वरकी आज्ञा है, इत्यादि कुमार्गका उपदेश करो! कर्म के उदयोकों अनिवार्य होनेसें (नु) अव्यय है, खेदार्थमें तिससें बडा खेद है (नाम) कोमलामंत्रणमें है वा प्रसिद्धार्थमें है तब तो ऐसा अर्थ हुवा कि, बडाही खेद है कि ऐसे असूया करके अंध पुरुष (अन्यानपि) अन्य जगत्वासी मनुष्योंकोंभी (प्रलम्भं) कुमार्गके लाभ-प्राप्तिकों (लम्भयन्ति) प्राप्ति कराते हैं, अर्थात् आप तो कुमार्गकी देशना करनेसें नाशकों प्राप्त हुए हैं, परं अन्य जनोंकाभी कुमार्गमें प्रवर्त्ताके नाश करते हैं। इतना करकेभी संतोषित नही होते हैं, बलकि वे, असूया इर्षा करके अंधे (सुमार्गगं) सुमार्ग गत पुरुषकों, (तद्विदं) सुमार्गके जानकारकों और (आदिशन्तं) सुमार्गके उपदेशककों (अवमन्वते) अपमान करते हैं। जैसें यह ईश्वरकों जगत्कर्त्ता नही मानते हैं, वेदोंके निंदक हैं, वेद बाह्य हैं, नास्तिक हैं, जगत्कों प्रवाहसें अनादि मानते हैं, कर्मका फलप्रदाता निमित्तकों मानते हैं, परंतु ईश्वरको फलप्रदाता नही मानते हैं, आत्माकों देहमात्र व्यापक मानते हैं, षट्कायको जीव मानते हैं, इत्यादि अनेक तरेसें अपना मत चलाते हैं; इस वास्ते अहो लोको !

इनके मतका श्रवण करना तथा इनका संसर्ग करना, अच्छा नही है, इत्यादि अनेक वचन बोलके पूवोक्त तीनोंका अपमान करते हैं।॥७॥

अथाग्रे भगवत्के शासनका महत्त्व कथन करते हैं।

प्रादेशिकेभ्यः परशासनेभ्यः
पराजयो यत्तव शासनस्य ।
खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यो
विडम्बनेयं हरिमण्डलस्य ॥ ८ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (परशासनेभ्यः) पर शासनोंसें, कैसें पर शासनोंसे ? (प्रादेशिकेभ्यः) प्रमाणका एक अंश माननेसें जे मत उत्पन्न हूए है, अर्थात् एक नयको मानके जे परमत वादीयोंने उत्पन्न करे हैं, तिनका नाम प्रादेशिक मत है। आत्मा एकांत नित्यही है, वा क्षणनश्वरही है, वस्तु सामान्य रूपही है, वा विशेष रूपही है वा सामान्य विशेष स्वतंत्र ही पृथक् २ है, कार्य सत्ही उत्पन्न होता है, वा असत् ही उत्पन्न होता है, गुण गुणीका एकांत भेद ही है, वा एकांत अभेदही है, एकही ब्रह्म है, इत्यादि प्रादेशिक परमतोंसे (यत्) जो (तव शासनस्य) तेरे शासनका (पराजय) पराजय है, सो ऐसा है, जैसा (खद्योतपोतद्युतिडम्बरभ्यः) खद्योतके बच्चेकी पांखो के प्रकाश रूप अंडबरसें (हरि मंडलस्य) सूर्यके मंडलकी (इयं) येह (विडम्बना) विटम्बना अर्थात् पराभव करना है, भावार्थ यह है कि, क्या खद्योतका बच्चा अपनी पांखोके प्रकाशसें सूर्यके प्रकाशकों पराभव कर सक्ता है ? कदापि नही कर सक्ता है। तैसें ही, हे जिनेंद्र ! एक नया भास मतके माननेवाले वादी, खद्योत पोतवत् तेरे अनंत नयात्मक स्याद्वाद मतरूप सूर्यमंडलका पराभव कदापि नही कर सक्ते हैं ॥ ८ ॥

भगवंतका शासन सर्व प्रमाणोंसे सिद्ध है। अथ, जो ऐसे शासनमें संशय करता है, क्या जाने यह भगवंत अर्हन्का शासन सत्य है, वा नही ? अथवा, जो भगवंतके शासनमें विवाद करता है कि, यह शासन सत्य न ही है, ऐसे पुरुषकों स्तुतिकार उपदेश करते हैं।

शरण्यपुण्ये तव शासनेऽपि
संदेग्धि यो विप्रतिपद्यते वा ।
स्वादौ सतथ्ये स्वहिते च पथ्ये
संदेग्धि वा विप्रति पद्यते वा ॥ १ ॥

व्याख्या— हे जिनेंद्र! (शरण्यपुण्ये) शरणागतकों जो त्राण करणे योग्य होवे तिसकों शरण्य कहते हैं तथा पुण्य पवित्र ऐसे (तव) तेरे (शासनेऽपि) शासनके हूएभी (यो) जो पुरुष तेरे शासनमें (संदेग्धि) संदेह करता है (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता है, सो पुरुष (स्वादौअत्यंत) स्वादवाले (तथ्ये) सच्चे (स्वहिते) स्वहितकारी (च) और (पथ्ये) निरोग्यतामें साहायक ऐसे सुंदर भोजनमें (संदेग्धि) संशय करता है, क्या जाने यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य है, वा नही? (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता है, यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य, नही है, यह तिसकी प्रग अज्ञानता है। अंतिमका वा, पाद पूरणार्थ है। काव्यका भावार्थ यह है कि, हे जिनेंद्र! शरणागतकों त्राण करणेवाला तेरा शासन शरण्य रूप है "चत्तारि सरणमिति वचनात्"—चारही वस्तुयें जगत्में शरण्य है। अरिहंत १, सिद्ध, २, साधु, ३, और केवलज्ञानीका कथन करा हुआ धर्म, ४. तिनमें अरिहंत उसकों कहते हैं, जिनोने ज्ञानावरण, १, दर्शनावरण, २, मोहनीय, ३, और अंतराय, ४, इन चारों कर्मकी ४७ उत्तर

प्रकृतियां क्षय करी है, और अष्टादश दूषणोंसें रहित हूए है, केवल ज्ञान और केवल दर्शन करके संयुक्त है, चौत्रीस अतिशय और पैंत्रीस वचन अतिशय करके सहित है, जीवन मोक्षरूप है, महामाहन, १, महागोप, २, महानिर्यामक, ३, महासार्थवाह, ४, येह चारों जिनकों उपमा है, परोपकार निरपेक्ष अनुग्रहके वास्ते जिनोंका भव्य जनोंकेतांइ उपदेश है, अरिहंतके विना अन्य कोइ यथार्थ उपदेष्टा शरणभूत नही हैं; क्यौंकि, इनोंनेही आदिमें जगत्वासीयोंको उपदेशद्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करा है ॥ १ ॥

दूसरा शरण सिद्धोंका है, जे अष्ट कर्मकी उपाधिसें रहित है, सदा आनंद और ज्ञान स्वरूप है, स्वस्वरूपमें जिनोंका अवस्थान है, अमर, अचर अजर, अमल, अज, अविनाशी, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सदाशिव, पारंगत, परमेश्वर, परमब्रह्म, परमात्मा, इत्यादि अनंत तिनके विशेषण है, ऐसे सिद्ध परमात्मा शरणभूत है; जे कर एसे सिद्ध न होवे तब तो अरिहंतके कथन, करे मार्गकों भव्य जन काहेकों अंगीकार करे? और सिद्धांके विना आत्माका शुद्ध स्वरूप केसें जाना जावे ? इस वास्ते सिद्ध आत्मस्वरूप के अविप्रणासके हेतु है, इस वास्ते शरणरूप है ॥ २ ॥

तीसरा शरण साधुओंका है। साधु कहनेसें आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन तीनोंका ग्रहण है। जे कर आचार्य उपाध्याय न होते तो, अस्मदादिकांको अरिहंतका उपदेश कौन प्राप्त करता? और साधु न होते तो जगत्वासीयांको मोक्षमार्ग पालन करके कौन दिखाता? और मौक्षमार्गमें प्रवर्त्त हुए भव्य जनोंकों साहाय्य कौन करता ? इस वास्ते साधु शरणभूत है. ॥ ३ ॥

चौथा शरण केवल ज्ञानीका कथन करा हुआ धर्म है; क्यौंकि विना धर्मके पूवोक्त वस्तुयोंका अस्मदादिकांकों कौन बोध करता?

इस वास्ते सर्व शरणाभूतोंसे अधिक शरण्यभूत, हे भगवन् ! तेरा शासन है ॥ ४ ॥

तथा हे जिनेंद्र ! तेरा शासन पुण्य पवित्र है, सर्व दूषणोंसें मुक्त होनेसें, प्रमाण युक्ति शास्त्रसें, अविरोधि वचन होनेसें, तथा दृष्टसेंभी अविरोधि होनेसें, ऐसे शरण्य और पवित्र तेरे शासनके हुएभी, जो कोइ इसमें संशय करता है, वा विवाद करता है, सो पुरुष, अत्यंत स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य भोजनमें संशय करनेवाला है, अर्थात् वो अत्यंत ही मूर्ख है, जो ऐसी वस्तुमें संशय वा विवाद करता है ॥ ९ ॥

अथ स्तुतिकार अन्य आगमोंके अप्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं।

हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशाद-
सर्वविन्मूलतया प्रवृत्तेः ।
नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहाच्च
ब्रूमस्त्वदन्यागममप्रमाणम् ॥ १० ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (त्वदन्यागमम्) तेरे कथन करे हुए आगमोंसें अन्य आगम (अप्रमाणम्) प्रमाण नही, अर्थात् सत्पुरुषांकों मान्य नही है, ऐसें (ब्रूमः) हम कहते हैं। अन्य आगमोंको प्रमाणता किस हेतुसें नही है? सोइ दिखाते हैं (हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशात्) वे, अन्य वेदादि आगम, हिंसादि असत् कर्मोंके पथके उपदेशक होनेसें, और (असर्वविन्मूलतयाप्रवृत्तेः) असर्ववित् , असर्वज्ञोंके मूलसें प्रवृत्त होनेसें, अर्थात् असर्वज्ञोंके कथन करे हुए होनेसें, और (नृशं-सदुर्बुद्धिपरिग्रहात्) निर्दय, उपलक्षणसें मृषा, चोरी, स्त्री, परिग्रहके धारनेवाले दुर्बुद्धि, अर्थात् कदाग्रही असत्पक्षपातीयोंके ग्रहण करे हुए होनेसें; भावार्थ ऐसा है कि, जे आगम, निर्दयी, मृषावादी, अदत्तग्राही स्त्री के भोगी और परिग्रहके लोभीयोंने ग्रहण करे हैं, अर्थात् वे जिन

आगमोंकों जगत् में प्रवर्त्तावने वाले हैं, और जे आगम हिंसादि, आदि शब्दसें मृषा, अदत्तादान, मैथुनादि पाप कर्म करनेके उपदेशक हैं, वे आगम प्रमाण नही है। ॥ १० ॥ अथ भगवंतप्रणीत आगमके प्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं।

हितोपदेशात्सकलज्ञक्लृप्ते
र्मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहाच्च ।
पूर्वापरार्थेप्यविरोधसिद्धे
स्त्वदा गमा एव सतां प्रमाणम् ॥ ११ ॥

व्याख्या— हे भगवन् जिनेंद्र! (त्वदागमाएव) तेरे कथन करे हुए द्वादशांगरूप आगमही (सतां) सत्पुरुषांकों (प्रमाणम्) प्रमाण है, किस हेतुसें (हितोपदेशात्) एकांत हितकारी उपदेशके होनेसें और (सकलज्ञक्लृप्तेः) सर्वज्ञके कथन करे रचे हुए होनेसें, (च) और (मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहात्) मोक्षकी इच्छावाले सत्साधुयोंके ग्रहण करनेसें, अर्थात् आचार्य उपाध्याय साधु जिनके प्रवर्त्तक होनेसें, (अपि) तथा (पूर्वापरार्थे) पूर्वापर कथन करे अर्थोमें (अविरोध-सिद्धेः) अविरोधकी सिद्धिसें. ॥ ११ ॥ अथ भगवत्के सत्योपदेशकों परवादी किसी प्रकारसेंभी निराकरण नही कर सक्ते हैं यह कथन करते हैं ।

क्षिप्येत वान्यैः सदृशी क्रियेते वा
तवाङ्घ्रिपीठे लुठनं सुरेशितुः ।
इदं यथावस्थितवस्तुदेशनं
परैः कथंकारमपाकरिष्यते ॥ १२ ॥

व्याख्या— हे जिनेंद्र ! (तव) तेरे (अङ्घ्रिपीठे) चरण कमलोंमें,

जो (सुरेशितुः) इंद्रका (लुठनं) लुठना-लोटना था, चरणमें चौसठ इंद्रादि देवते सेवा करते थे, इत्यादि जो तेरे आगममें कथन है, तिसकों (अन्यैः) परवादीबौद्धादि, (क्षिप्येत) क्षेपन करें-खंडन करें; यथा जिनेंद्रके चरण कमलोंमें इंद्रादि देवते सेवा करते थे, यह कथन सत्य नही है, जिनेंद्र और इंद्रादि देवतायोंके परोक्ष होनेसें (वा) अथवा (सदृशी क्रियेत) सदृश करें, जैसें श्री वर्द्धमान जिनके चरणोंमें इंद्रादि लोटते थे—चरण कमलकी सेवा करते थे, ऐसेही श्रीबुद्ध भगवान् शाक्यसिंह गौतमकेभी चरणोंमें इंद्रादि सेवा करते थे, ऐसें कहें; परंतु (इदं) यह जो (यथावस्थितवस्तुदेशनं) यथार्थ वस्तुके स्वरूपका कथन तेरे शासनमें है, तिसकों (परैः) परवादी (कथंकारम्) किस प्रकार करते (अपाकरिष्यते) अपाकरण-तिरस्कार-खंडन करेंगे अपितु किसी प्रकारसेंभी खंडन नहीं कर सकेंगे. ॥ १२ ॥

अत्र कोइ प्रश्न करे कि, यदि अर्हन् भगवन् श्री वर्द्धमानका, कोइभी परवादी जिसका किसी प्रकारसेंभी खंडन नही कर सक्ते हैं ऐसा सत्योपदेश है, तो फेर अन्य मतावलंबी तिसकी उपेक्षा क्यौं करते हैं? इसका उत्तर स्तुतिकार श्रीमद्हेमचंद्राचार्य देते हैं।

तदुःखमाकालखलायितं वा
पचेलिमं कर्मक्षवानुकूलम् ।
उपेक्षते यत्तव शासनार्थं
मयं जनो विप्रतिपद्यते वा ॥ १३ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (यत्) जो (अयं जनः) यह प्रत्यक्ष जन (तव) तेरे (शासनार्थं) शासनार्थकी (उपेक्षते) उपेक्षा करता है, (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) तेरे शासनार्थके साथ शत्रुपणा करता है

(तत्) सो, तिस प्राणिका (दुःखमाकालखलायितं) पंचम दुःखम कालका खलायितपणा है,—दुःखम कालही तिस जीवके साथ खलकी तरें आचरण करता है, जो सत्य जिनेंद्रके कथन करे मार्गकी प्राप्ति नही होने देता है, (वा) अथवा, (भवानुकूलम्) तिस जीवके भवानुकूल संसारमें भ्रमण करवाने योग्य (कर्म) अशुभ कर्म मिथ्यात्व मोहनीयादि (पचेलिमं) पक्के हुए, अर्थात् अपना फल देनेके वास्ते उदयावलिमें आये हुए है, तिनके उदयसें जिनेंद्रके कथन करे हुए मार्गकों अंगीकार नही कर सक्ता है, जैसें, ऊंट द्राक्षावेलडीके खानेकी इच्छा नही करता है, तैसेंही दुःखम काल खलायितपणेसें ओर पचेलिम कर्मके उदयसें, यह जन, हे जिनेंद्र! तेरे मार्गकी उपेक्षा करता है, अर्थात् कल्याणकारी जानके अंगीकार नही करता है; अथवा तेरे शासनके साथ शत्रुपणा करता है ॥ १३ ॥ कोई कहे कि, तप करना, और योगाभ्यासादि सत्कर्म करने, तिनके प्रभावसेंही मोक्षकी प्राप्ति हो जावेगी, तो फेर जिनेंद्रके कथन करे मार्गके अंगीकार करनेकी क्या आवश्यकता है ? तिसका उत्तर, स्तुतिकार देते हैं ।

परः सहस्राः शरदस्तपांसि
युगांतरं योगमुपासतां वा ।
तथापि ते मार्गमनापतन्तो
न मोक्ष्यमाणा अपि यान्ति मोक्षम् ॥ १४ ॥

व्याख्या— हे भगवन् ! (परः) पर अन्य मतावलंबी (सहस्राः) हजारों (शरदः) वर्षोंतांई (तपांसि) विविध प्रकारके तप करो, (वा) अथवा (युगांतरं) अर्थात् बहुत युगांतांई (योगं) योगाभ्यासकों (उपासतां) सेवोकरो, (तथापि) तोभी वे (ते) तेरे (मार्गम्) मार्गकों (अनापतंतः) न प्राप्त होते हुए, अर्थात् तेरे मार्गके

अंगीकार करे विना, (मोक्ष्यमाणा अपि) चाहो वे अपने आपकों मोक्ष होना मानभी रहे हैं, तोभी, (मोक्षम्) मोक्षकों (न) नही (यांति) प्राप्त होते हैं, क्यौंकि, सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रके अभावसें किसीकोंभी मोक्ष नहीं है, और सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति, तेरे मार्ग विना कदापि नही होवे है ।। १४ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार, परवादीयोंके उपदेश भगवत्के मार्गकों किंचिन्मात्रभी कोप वा आक्रोश नही कर सक्ते हैं, सो दिखाते हैं।

अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्व
संभावनासंभविविप्रलम्भाः ।
परोपदेशाः परमाप्तक्लृप्त-
पथोपदेशे किमु संरभन्ते ॥ १५ ।।

व्याख्या— हे जिनेंद्र! (परोपदेशाः) जे परमतवादीयोंके उपदेश है, वे उपदेश (परमाप्तक्लृप्तपथोपदेशे) तेरे परमाप्त के रचे कथनकरे उपदेशमें (किमु) क्या, किंचिन्मात्रभी (संरंभन्ते) करते हैं? अर्थात् कोप वा आक्रोश करते हैं? किंचिन्मात्रभी नही क्या? खद्योत प्रकाश करते हुए सूर्य मंडलकों कोप वा आक्रोश कर सक्ता है? कदापि नही। ऐसें तेरे शासनकोंभी परोपदेश संरंभ नही कर सक्ते हैं, क्यौंकि, परवादीयोंके मतमें जो सूक्ति संपत् है, सो तेरेही पूर्व रूपीये समुद्रके बिंदु गए हुए है, तिनके बिना जो परवादीयोंने स्वकपोलकल्पनासें मिथ्या जाल खडा करा है, सो सर्व युक्ति प्रमाणसें बाधित है, इस हेतुसें परवादीयों के उपदेश तेरे मार्गमें कुछभी कोप वा आक्रोश नही कर सक्ते हैं। कैसें है वे, वे परवादीयोंके उपदेश ? (अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलंभाः) अनाप्तोंकी बुद्धिकी जो जाड्यतादि, तिससें निर्मितित्व संभावना, अर्थात् अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी

संभावना करके विप्रलंभरूप वे उपदेश रचे गए हैं; भावार्थ यह है कि, अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावनासें जे विप्रलंभरूप-विप्रतारणरूप उपदेश रचे गए हैं, वे उपदेश, तेरे परमाप्तके रचे पथोपदेशमें कोप वा आक्रोश, वा तिनके खंडनमें उत्साह, वा वेग जलदी नही कर सक्ते हैं, असमर्थ होनेसें. ।। ९५ ।।

अथ स्तुतिकार परवादियोंके मतमें जे उपद्रव हुए हैं, वे उपद्रव भगवान्के शासनमें नही हुए हैं, ऐसा स्वरूप दिखाते हैं।

यदार्जवादुक्तमयुक्तमन्यै
स्तदन्यथाकारमकारि शिष्यैः।
न विप्लवोऽयं तव शासनेभूदहो
अधृष्या तव शासनश्रीः ।। १६ ।।

व्याख्या— (अन्यैः) परमतके आदि पुरुषोंने (आर्जवात्) आर्जवसें अर्थात् भोले भाले सादे अपने मनमाने विचारसें (यत्) जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें (अयुक्तम्) अयोग्य (उक्तम्) कथन करा है (तत्) सोही कथन (शिष्यैः) तिनके शिष्योंने (अन्यथाकारम्) अन्यरूपही (अकारि) कर दीया है; क्योंकि, प्रथम जे वेद थे वे अनीश्वरवादी मीमांसकोंके मतानुयायी थे, और कर्मकांड यजनया-जनादि और अनेक देवतायोंकी उपासना करके स्वर्ग प्राप्ति मानते थे, और काम्य कर्मों के वास्ते अनेक तरेंके यज्ञादि करते थे, मोक्ष होना नही मानते थे, सर्वज्ञकोंभी नही मानते थे, वेदोंकों अपौरुषेय किसीके रचे हुए नही हैं, किंतु अनादि हैं, ऐसें मानते थे; तिस अपने मतकी पुष्टि वास्ते पूर्वमीमांसा नामक ऐसें जैमनि मुनिने रचे है, ऐसा इस मतका स्वरूप था। प्रथम तो वेदोंमें ही गडबड कर दीनी, कितनेही प्राचीन मंत्र बीचसें निकाल दिये, ऋग्वेदमें पुरुषसूक्त, और जे जे

ईश्वर विषयक ऋचा हैं, वे प्रक्षेप कर दीनी है; और यजुर्वेदादिकोंमें 'सहस्रशीर्षः सहस्रपात्' तथा 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' इत्यादि तथा 'इशावास्य' इत्यादि; तथा चारवेद ईश्वरसें उत्पन्न हुए हैं, तथा चार वेद हिरण्यगर्भ के उत्स्वास रूप है इत्यादि श्रुतियां ईश्वर विषयक वेदोंमें प्रक्षेप करके वेदोंकों ईश्वरके रचे हुए सिद्ध करे; पीछे तिन वेदोंके मूल पाठमें भेदवालीयां हजारां शाखा और शाखाके सूत्र रचे गए, तदनंतर यास्काचार्यादिकोंनें निघंटु निरुक्तादि रचके वेदोंके शब्दोंके अर्थोमें गडबड करीदीनी, 'यथा अग्निमीळे (ले)' इत्यादिमें, 'अग्निर्वै विष्णुः' इत्यादि ।

और कुमारिल मीमांसाके वार्त्तिककारनेभी, प्राचीन अर्थोमें बहुत गडबड करी है; तथा वेद रचनाके पहिलें निरीश्वरी सांख्य मत था; पीछे नवीन सांख्य मतवाले उत्पन्न हुए, तिनोंने सेश्वर सांख्यमत प्रगट करा; पीछे सांख्य मतके अनुसार ऋषियोंने वेदांत अद्वैत ब्रह्म के स्वरूपके प्रतिपादक पुस्तक रचे, तिनोंका नाम उपनिषद् रक्खा; प्रकृतिकी जगे मायाकी कल्पना करी, और तीन गुणादि २४ चौवीस तत्वोंके नाम वेही रक्खे, परंतु तिनकों माया करके कल्पित ठहराए; और प्रमाण भट्ट मतानुसारि मानलीए. और उपनिषद् नामक ग्रंथ तो इतने रच लिए कि, जिसने अपना नवीन मत चलाया, तिसकी सिद्धिके वास्ते नवीन उपनिषद् रचके प्रसिद्ध करी; जैसे रामतापनी, गोपालतापनी, हनुमतोपनिषद्, अल्लोपनिषद्, इत्यादि पीछे तिनके भाष्यादि रचे गए ।

शंकर स्वामीने दश उपनिषदों ऊपर, गीता ऊपर, और विष्णु-सहस्र, नामादि ऊपर भाष्य रचे; तिनोंने प्राचीन अर्थोकों व्यवच्छेद करके नवीनही तरेके अर्थ रचे; तिस भाष्यके ऊपर टीकाकारोंने शंकरकी भूलें सुधारनेकों टीका रची। पुराण, और स्मृतिनामक

कितनेही पुस्तकोंमें प्राचीन पाठ निकाल कर नवीन पाठ प्रक्षेप करे, और कितनेही नवीन रचे; सांप्रति शंकर स्वामीके मतानुयायीयोंमें वेदांत मतके माननेमें सैंकडो भेद हो रहे हैं, तथा व्याससूत्रोंपरि शंकरस्वामिने शारीरक भाष्य रचा है, और अन्योंने अन्य तरेके भाष्यार्थ रचे हैं, सायणाचार्यने चारों वेदों उपर नवीन भाष्य रचके मन माने अर्थ उलट पुलट विपर्यय करके लिखे हैं, परंतु प्राचीन भाष्यानुसार नही। और दयानंद सरस्वतीजीने तो, ऋग्वेद और यजुर्वेद के दो भाष्य ऐसे विपरीत स्वकपोलकल्पित रचे हैं कि, मृषावादकों बहुतही पुष्ट करा है, सो वांचके पंडित जन बहुतही उपहास्य करते हैं। संप्रति दयानंद स्वामीके चलाये आर्य समाज पंथके दो दल हो रहे हैं, तिनमेंसे एक दलवाले तो मांस खानेका निषेधही करते हैं, और दूसरे दलवाले कहते हैं कि, वेदमें मांस खानेकी आज्ञा है, इससें प्रगट मांस खानेका उपदेश करते हैं, और राजपुताना योधपुरके महाराजा सर प्रतापसिंहजीनें एक नवीन पुस्तक बनवा कर, तिसमें अथर्ववेद के मंत्र लिखके, तिनके उपर एक पंडितने नवीन भाष्य रचा है, तिसमें बहुत प्रकारसें मांसका खाना ईश्वरकी आज्ञासें सिद्ध करा है। तथा इस विषयक मनुस्मृति और दयानंदस्वामी आदिका भी प्रमाण लिखा है। अब यह दोनों दल परस्पर विवाद कर रहे हैं।

और गौतमने सिर्फ वेद और वेदांतके खंडनवास्ते ही न्यायसूत्र रचे हैं, वेद और वेदांतसें विपर्ययही प्रक्रिया रची है, कणादने षट् पदार्थ ही रचे हैं इत्यादि अनेक विप्लव अन्य मतके शास्त्रोंमें तिनके शिष्योंने करे हैं अर्थात् पूर्वजनोंने जो कुछ कथन करा था, सो, तिनके शिष्यप्रशिष्यादिकोंने अन्यथा आकारवाला कर दिया है !!! हे जिनेंद्र! (तव) तेरे (शासने) शासनमें (अयं) यह पूर्वोक्त (विप्लवः) विप्लव (न) नहीं (अभूत्) हुआ है अर्थात् शिष्य प्रशिष्योंका करा ऐसा विप्लव तेरे कथनमें नही हुआ हैं। क्योंकि,

सात निह्नव, और अष्टमबोटिक महा निह्नव, इनोंनें किंचिन्मात्र विप्लव करना चाहा था, तोभी, तिनका करा किंचिद् विप्लव न हुआ, शासनसें बाह्य तिनकों श्री संघने तत्काल कर दीए, इसवास्ते तेरे शासनमें पूर्वोक्त विप्लव नही हुआ है। इस वास्ते (अहो) बडाही आश्चर्य है कि, (तव) तेरे (शासनश्रीः) शासनकी लक्ष्मी (अधृष्या) अधृष्य है, अर्थात् कोईभी तिसकी धर्षणा नही कर सक्ता है।। १६।।

अथ परवादीयोंने जे जे अपने अपने मतके अधिष्ठाता स्वामीभूत देवते कथन करे है, तिनमें जे जे अघटित परस्पर विरुद्ध बातें हैं, वे, स्तुतिकार दिखाते हैं।

देहाद्ययोगेन सदा शिवत्वं
शरीरयोगादुपदेशकर्म ।
परस्परस्पर्धि कथं घटेत
परोपक्लृप्तेष्वधिदैवतेषु ।। १७ ।।

व्याख्या—(देहाद्ययोगेन) देहादिके अयोगसें, अर्थात् देह, आदि शब्दसें राग, द्वेष, मोहादि सर्व कर्म जन्य उपाधिके अभावसें (सदा) निरंतर (शिवत्वं) शिवपणा, सत्चित्आनंदरूप परम ब्रह्म परमात्मा परम ईश्वरपणा है; और (शरीरयोगात्) शरीरके योगसें संबंधसेही (उपदेशकर्म) उपदेश कर्म है, अर्थात् देहवाला ईश्वर होवे तबही उपदेष्टा हो सक्ता है; यह दोनो बातें (परस्परस्पर्धि) परस्पर विरोधि (कथं) किसतरें (परोपक्लृप्तेषु) परवादीयोंके माने हुए (अधिदैवतेषु) अधिदेवतायोंमें (घटेत) घटती हैं? अपितु किसी प्रकारसेभी नही घट सक्ती हैं क्योंकि, परवादीयोंने अनादि मुक्तरूप, निरुपाधिक, निरंजन, निराकार, ज्योतिःस्वरूप, एक ईश्वर, सर्व व्यापक माना है; ऐसा ईश्वर किसी प्रकारसेंभी उपदेष्टा सिद्ध नही हो सक्ता है। उपदेश करनेके

देहादि उपकरणोंके अभावसें। क्योंकि, धर्माधर्म, अर्थात् पुण्य पापके विना तो देह नही हो सक्ता है, और देह विना मुख नही होता है, और मुख विना वक्तापणा नही है, व्याकरणके कथन करे स्थान और प्रयत्नों के विना साक्षर शब्दोच्चार कदापि नही हो सकता है, तो फेर देहरहित, सर्वव्यापक, अक्रिय परमेश्वर, किसतरें उपदेशक सिद्ध हो सकता है ?

पूर्वपक्षः- परमेश्वर अवतार लेके, देहधारी होके, उपदेश देता है।

उत्तरपक्षः- परमेश्वरके मुख्य तीन अवतार माने जाते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, और येही मुख्य उपदेशक माने जाते हैं, परंतु पर-वादियोंके शास्त्रानुसार तो ये तीनो देव, राग, द्वेष, अज्ञान, काम, ईर्षादि दूषणोंसें रहित नही थे; तो फेर, ईश्वर, अनादि, निरुपाधिक, सदा मुक्त, सदाशिव, कैसें सिद्ध होवेगा ? और सर्वव्यापी ईश्वर, एक छोटीसी देहमें किसतरें प्रवेश करेगा ?

पूर्वपक्षः- हम तो ईश्वरके एकांशका अवतार लेना मानते हैं।

उत्तरपक्षः- तब तो ईश्वर एक अंशमें उपाधिवाला सिद्ध हुआ, तब तो ईश्वरके दो विभाग हो गए, एक विभाग तो सोपाधिक उपाधिवाला, और एक विभाग निरुपाधिक उपाधिरहित.

पूर्वपक्षः- हां हमारे ऋग्वेद और यजुर्वेदमें कहा है कि, ब्रह्म के तीन हिस्से तो सदा मायाके प्रपंचसे रहित, अर्थात् सदा निरुपाधिक है, और एक चौथा हिस्सा सदाही उपाधि संयुक्त रहता है।

उत्तरपक्षः- तब तो ईश्वर, सर्व, अनादि, मुक्त, सदा शिवरूप न रहा, परं, देश मात्र मुक्त, और देशमात्र सोपाधिक रहा। तब एकाधिकरण ईश्वरमें परस्पर विरुद्ध, मोक्ष और बंधका होना सिद्ध

हुआ, सो तो दृष्टेष्टबाधित है। छायातपवत्। विशेष इसका समाधान श्रुतिसहित आगें करेंगे। तब तो, ईश्वरकों सदा मुक्त, कूटस्थ, नित्य, देहादिरहित, सदा शिवादि न कहना चाहिये।

पूर्वपक्षः- ईश्वर तो देहादिसें रहित, सर्वव्यापक और सर्व शक्तिमान् है, इस वास्ते ईश्वर अवतार नही लेता है, परंतु सृष्टिकी आदिमें चार ऋषियोंकों अग्नि १, वायु २, सूर्य ३ और अंगिरस ४ नामवालोंकों, वेदका बोध ईश्वर करता है।

उत्तरपक्षः- यद्यपि यह पूर्वोक्त कहना दयानंदस्वामीका नवीन स्वकपोलकल्पित गप्परूप है, तथापि इसका उत्तर लिखते हैं। प्रथम तो, ईश्वर सर्वव्यापक होनेसें अक्रिय अर्थात् वो कोइभी क्रिया नही कर सकता है, आकाशवत्; तो फेर ऋषियोंको वेदका बोध कैसें करा सकता है।

पूर्वपक्षः- ईश्वर अपनी इच्छासें वेदका बोध करता है ।

उत्तरपक्षः- इच्छा जो है, सो मनका धर्म है, और मन देह बिना होता नही हैं, ईश्वरके देह तुमने माना नही है, तो फेर, इच्छाका संभव ईश्वरमें कैसें हो सकता है?

पूर्वपक्षः- हम तो इच्छानाम ईश्वरके ज्ञानकों कहते हैं, ईश्वर अपने ज्ञानसें प्रेरणा करके वेदका बोध कराता है।

उत्तरपक्षः- यहभी कहना मिथ्या है, क्योंकि, ज्ञान जो है, सो प्रकाशक है, परंतु प्रेरक नही है, ईश्वरमें रहा ज्ञान, कदापि प्रेरणा नही करसक्ता है, तो किसतरें ऋषियोंकों वेदका बोध कराता है ?

पूर्वपक्षः- पूर्वोक्त ऋषि, अपने ज्ञानसें ही ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानके, लोकोंकों वेदोंका उपदेश करते हैं।

उत्तरपक्षः- यहभी कथन ठीक नही है, क्योंकि, जब ऋषि अपने ज्ञानसें ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानते हैं, तो वो वेदज्ञान ईश्वस्के ज्ञानमें व्यापक है? वा किसीजगे ज्ञानमें प्रकाशका पुंजरूप हो रहा है ? जेकर सर्वव्यापक है,तब तो ऋषियोंने ईश्वरका सर्वज्ञान देख लीना; जब ईश्वरका सर्वज्ञान देखा, तब तो ईश्वरका सर्व स्वरूप ऋषियोंने देख लीया, तब तो ऋषिही सर्वज्ञ सिद्ध हुए; सो तो तुम ईश्वरके बिना अन्य किसीभी जीवकों सर्वज्ञ मानते नही हैं। जेकर मानोगें, तो वे ऋषि सर्वज्ञ ईश्वरतुल्य होवेगें, और अपने ज्ञानसेंही वेदोंके उपदेशक सिद्ध होवेगें, तब ईश्वरके कथन करे,वा कराये वेद क्यौंकर सिद्ध होवेगें? जेकर दूसरा पक्ष मानोगें तब तो अनाडीके रंगे वस्त्रके रंगसमान ईश्वरका ज्ञान सिद्ध होवेगा, जैसें अनाडीके रंगे वस्त्रमें एकजगे तो अधिक रंग होता है, और दूसरी जगे अल्परंग होता है; ऐसेही ईश्वरकाभी ज्ञान, एक अंशमें वेदादिज्ञानके प्रकाश-पुंजरूप ज्ञानवाला है; तब तो एक अंशमें ईश्वर वेदोंके ज्ञानवाला है और अन्य सर्व अनंत अंशोंमें वेदके ज्ञानसें अज्ञानी सिद्ध होवेगा; इस वास्ते शरीररहित सर्व व्यापक ईश्वर, कदापि वेदादिशास्त्रोंका उपदेशक सिद्ध नही होता है।

पूर्वपक्षः- ईश्वर सर्वशक्तिमान है, इस वास्ते देहरहित सर्व-व्यापक ईश्वर, अपनी शक्तिसें सर्वकुछ करसक्ता है; हे जैनो! ऐसे तुम मान लेवो ।

उत्तरपक्षः- ऐसे तुम्हारे कथनमें क्या प्रमाण है? क्यों कि, प्रमाणविना प्रेक्षावान् कदापि किसीके कथनकों नही मानेगें; परंतु यह तुम्हारा कथन तो तुम्हारी प्रीय भार्या आर्यासमाजिनीही मानेगी, अप्रमाणिक होनेसें। और एक यहभी बात है कि, जब तुमने ईश्वरकों विना प्रमाणसे ही सर्वशक्तिमान् माना है तो, क्या ईश्वरमें अवतार

लेनेकी शक्ति नही है ? क्या ईश्वर कृष्णावतार लेके, गोपियोंके साथ क्रीडा रासविलास भोगविलासादि नही कर सक्ता है? क्या शंकर बन करके, पार्वती के साथ विविध प्रकारके भोगविलास और अनेकतरेंकी शिवकी लीला नही कर सक्ता है? क्या ब्रह्मा बनके चारों वेदोंका उपदेश, और निजपुत्रीसें सहस्र वर्षतक भोगविलास नही कर सक्ता है? क्या मत्स्यवराहादि चौवीस अवतार धारके अपने मनधारे कृत्य नही कर सकता है? क्या ईश्वर नाचना, गाना, रोना, पीटना, चोरी, यारी, निर्लज्जतादि नही कर सक्ता है? क्या लिंगकी वृद्धि करके, तीन लोकांतोंसेंभी परे नहीं पहुंचाया सक्ता है ? इत्यादि अनेक कृत्य जे अच्छे पुरुष नही कर सक्ते हैं, वे सर्व कृत्य ईश्वर कर सक्ता है?

पूर्वपक्षः- ऐसे ऐसे पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर नही कर सक्ता है, क्योंकि, ऐसी बुरी शक्तियां ईश्वरमें है तो सही, परंतु ईश्वर करता नहीं है।

उत्तरपक्षः- तुम्हारे दयानंदस्वामी तो लिखते हैं कि, ईश्वरकी सर्वशक्तियां सफल होनी चाहिये; जेकर पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर न करेगा तो, तिसकी सर्व शक्तियां सफल कैसे होवेंगी?

पूर्वपक्षः- ईश्वरमें ऐसी२. पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां नही है।

उत्तरपक्षः- तब तो वदतोव्याघात हुआ, अर्थात् सर्वशक्तिमान् ईश्वर सिद्ध नही हुआ, तो फेर, देह मुखादि उपकरणरहित सर्वव्यापक ईश्वर, प्रमाणद्वारा वेदोंका उपदेशक कैसें सिद्ध होवेगा? अपितु कदापि नही होवेगा. क्योंकि, उपदेश जो है सो देहवालेका कर्म है, इस वास्ते एक ईश्वरमें पूर्वोक्त देहरहित होना और उपदेशकभी होना, ये परस्पर विरोधि धर्म नही घट सक्ते हैं, इसवास्ते परवादीयोंका कथन अज्ञानविजृंभित है ॥ १७ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंत श्रीवर्द्धमानस्वामी फेर अयोग्यव्यवच्छेद कहते हैं—

प्रागेव देवांतरसंश्रितानि
रागादिरूपाण्यवमांतराणि ।
न मोहजन्यां करुणामपीश
समाधिमास्थाय युगाश्रितोऽसि ॥ १८ ॥

व्याख्याः — हे जिनेंद्र! हे ईश! (रागादिरूपाणि) राग, द्वेष, मोह, मद, भदनादिरूपदूषण (प्राक्-एव) पहिलांही (देवांतर-संश्रितानि) तेरे भयसें, (देवांतर) अन्यदेवोंमें आश्रित हुए हैं कि, मानू, निर्भय हम इहां रहेगें; जिनेंद्र तो हमारा समूलही नाश करनेवाला है, इसवास्ते किसी बलवंतमें रहना ठीक है, जो हमारी रक्षा करे, मानू, ऐसा विचारकेही रागादि दूषण देवांतरोंमें स्थित हुए हैं। कैसे है वे रागादिदूषण? (अवमांतराणि) जे क्षयकों प्राप्त नही हुए हैं, अर्थात् अप्रतिहत शक्तिवाले हैं, जिनका क्षय वा क्षयोपशम वा उपशम किंचित् मात्रभी नही हुआ है, इस वास्ते हे ईश ! तूं (समाधिं-आस्थाय) समाधिकों अवलंबके, समाधिनाम शुक्लध्यानकों अवलंबके, (मोहजन्यां) मोहजन्य (करुणां-अपि) करुणाकोंमी (न) नही (युगाश्रितः-अस्ति) युगमें आश्रित हुआ है, अर्थात् मोहरूप करुणा करकेभी तूं युगयुगमें अवतार नही लेता है। जैसे गीतामें लिखा है—

"उपकाराय साधूनां
विनाशाय च दुष्कृतम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय
संभवामि युगेयुगे ॥ १ ॥"

तथाबौद्धमतेपि

"ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्त्तारः परमं पदम् ।
गत्वा गच्छंति भूयोपि
भवन्तीर्थनिकारतः ॥ १ ॥"

अर्थः- अच्छे जनोंके उपकारवास्ते, और पापी दैत्योंके नाश करनेवास्ते, और धर्मके संस्थापनकरने वास्ते, हे अर्जुन! मैं युगयुगमें अवतार लेता हूं । १ । हमारे धर्मतीर्थका कर्ता बुद्ध भगवान्, परमपदकों प्राप्त होकेभी, अपने प्रवर्त्तमान करे धर्मकी वृद्धिकों देखके जगद्वासीयोंकी करी पूजाके लेनेवास्ते, और अपने शासनके अनादरसें अर्थात् अपने प्रवर्ताये शासनकी पीडा दूर करनेवास्ते, इहां आता है. ऐसी मोहजन्य करुणाकों हे ईश! युगयुगमें आश्रित नही हुआ है. ॥ १८ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें जैसा कल्याणकारी उपदेश रहा है, तैसा अन्यमत के देवोंमें नहीं है, यह कथन करते हैं—

जगन्ति भिन्दन्तु सृजन्तु वा
पुनर्यथा तथा वा पतयः प्रवादिनाम् ।
त्वदेकनिष्ठे भगवन् भवक्षय-
क्षमोपदेशे तु परं तपस्विनः ॥ १९ ॥

व्याख्याः— (प्रवादिनाम्-पतयः) प्रवादीयोंके पति, अर्थात् परमतके प्रवर्त्तक देवते हरिहरादिक, (यथा तथा वा) जैसें तैसें प्रवादीयोंकी कल्पना समान वे देवते (जगंति) जगतांको (भिंदंतु) भेदन करो-प्रलय करो-सूक्ष्म रूप करके अपने में लीन करो; (वा पुनः) अथवा (सृजंतु) सृष्टियांकों सृजन (उत्पन्न) करो, यह कर्त्तव्य तिनके कहनेमूजब होवो, वे देवते करो, परंतु हे भगवन्!

(त्वदेकनिष्ठे) एक तेरेहीमें रहे हुए (भवक्षयक्षमोपदेशेतु) संसारके क्षय करनेमें समर्थ ऐसे धर्मोपदेशके देनेमें तो, वे परवादीयोंके पति (स्वामी) देवते, (परं) परमउत्कृष्ट (तपस्विनः) तपस्वी अर्थात् दीन हीन कंगाल गरीब है, अनुकंपा करने योग्य है; क्योंकि, वे बिचारे दूधकी जगे आटेका धोवन अपने भक्तोंकों दूध कहके पिलारहे हैं, इस, वास्ते अनुकंपा करनेयोग्य है कि, इन बिचारांकों किसीतरें सच्चा दूध मिले तो ठीक है ॥ १९ ॥

अथ स्तुतिकार परवादियोंके नाथोंने भगवान्की मुद्राभी नही सीखी है यह कथन करते हैं—

वपुश्च पर्यंकशयं श्लथं च
दृशौ च नासानियते स्थिरे च ।
न शिक्षितेयं परतीर्थनाथै-
र्जिनेंद्रमुद्रापि तवान्यदास्ताम् ॥ २० ॥

व्याख्या— हे जिनेंद्र ! (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (इयं) येह (तव) तेरी (मुद्रा-अपि) मुद्राभी, शरीरका न्यासरूपभी (न) नही (शिक्षिता) सीखी है तो (अन्यत्) अन्य तेरे गुणोंका धारण करना तो (आस्ताम्) दूर रहा, कैसी है तेरी मुद्रा? (वपुः— च) शरीर तो (पर्यंकशयं) पर्यंकासनरूप (च) और (श्लथं) शिथिल है, (च) और (दृशौ) दोनों नेत्र (नासानियते) नासिकाउपर दृष्टिकी मर्यादासंयुक्त (च) और (स्थिरे) स्थिर है।

भावार्थः— यह है कि, भगवंतकी जो पर्यंकासनादिरूप मुद्रा है, सो मुद्रा, योगीनाथ भगवंतने योगीजनोंके ज्ञापनवास्ते धारण करी है; क्यों कि, जितना चिरयोगीनाथ आप योगकी क्रिया नही करदिखाता है तितना चिरयोगी जनोंकों योग साधनेका क्रियाकलाप

नही आता है तथा भगवंत अष्टादश दूषणरहित होनेसें निःस्पृह और सर्वज्ञ है, तिनकी मुद्रा ऐसीही होनी चाहिये; परंतु परतीर्थनाथोंने तो भगवंतकी मुद्राभी नही सीखी है; अन्यभगवंतके गुणोंका धारण करना तो दूर रहा, परतीर्थ नाथोंने तो भगवंतकी मुद्रासें विपरीतही मुद्रा धारण करी है; क्यों कि, जैसी देवोंकी मुद्रा थी, वैसीही मुद्रा तिनकी प्रतिमाद्वारा सिद्ध होती है ।

शिवजीने तो पांच मस्तक जटाजूटसहित, और शिरमें गंगाकी मूर्ति और नागफण, गलेमें रुंड (मनुष्योंके शिर) की माला, और सर्प, हाथ दश, प्रथम दाहने हाथमें डमरु, दूसरेमें त्रिशूल, तीसरें से ब्रह्माजीको आशीर्वादका देना, चौथेमें पुस्तक, और पांचवेमें जपमाला; वामे प्रथम हाथमें गंध सूंघनेकों कमल, दूसरेंमें शंख, तीसरे हाथसें विष्णुकों आशीर्वादका देना, चौथेमें शास्त्र, और पांचमें हाथसें दाहनेपगका पकडना, ऐसी मूर्ति धारण करी है। तथा अन्यरूपमें शिवजीने पार्वतीकों अर्धांगमें धारण करी है, और अपने हाथसें लपेट रहे है। तथा शिवजीके दाहनेपासे ब्रह्माजी हाथ जोडकरके खडे हैं, और वामेपासे विष्णु हाथ जोडके खडे हैं।

विष्णुकी और ब्रह्माजीकी मुद्रा तो प्रायः चित्रोंमें प्रसिद्धही है। शंक, चक्र, गदादिशस्त्र, और श्री (लक्ष्मी) जी सहित तो विष्णुकी; और चारमुख, कमंडलु जपमाला वेद पुस्तकादि चारों हाथोंमें धारण करे, ऐसी मुद्रा ब्रह्माजीकी है। परंतु योगीनाथ अरिहंतकी मुद्रा तो, किसीनेभी धारण नही करी है ॥ २० ॥

अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतके शासनकी स्तुति करते हैं—

यदीयसम्यक्त्वबलात् प्रतीमो
भवादृशानां परमस्वभावम् ।

कुवासना पाशविनाशनाय
नमोस्तु तस्मै तव शासनाय ॥ २१ ॥

व्याख्याः— (यदीयसम्यक्त्वबलात्) जिसके सम्यक्तबलसें, अर्थात् जिसके सम्यग् ज्ञानके बलसें (भवादृशानां) तुम्हारेसरीखे परमाप्तजीवनमोक्षरूप महात्मायोंके (परमस्वभावम्) शुद्धस्वरूपकों (प्रतीमः) हम जानते हैं (तस्मै) तिस (तव) तेरे (शासनाय) शासनकेतांइ हमारा (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, कैसे शासनकेतांई? (कुवासनापाशविनाशनाय) कुवासनारूपपाशीके विनाश करनेवाला तिसकेतांई ।

भावार्थः— जेकर हे भगवन्! तेरा शासन न होता तो, हमारे सरीखे पंचमकालके जीव तुम्हारे सरीखे परमाप्तपुरुषोंके परम शुद्धस्वभावकों कैसें जानते? परंतु तेरे आगमसें ही सर्वकूंजाना; और तेरे आगमनेही पांच प्रकारके मिथ्यात्वरूप कुवासनापाशीका विनाश करा है, इसवास्ते तेरे शासनकेतांई हमारा नमस्कार होवे. ॥ २१ ॥

अथ स्तुतिकार दो वस्तुयों अनुपम कहते हैं—

अपक्षपातेन परीक्षमाणा
द्वयं द्वयस्याप्रतिमं प्रतीमः ।
यथास्थितार्थप्रथनं तवैत-
दस्थाननिर्बंधरसं परेषाम् ॥ २२ ॥

व्याख्याः- (अपक्षपातेन) पक्षपातरहित हो कर (परीक्षमाणाः) जब हम परीक्षा करते हैं तो, (द्वयस्य) दो जनोंकी (द्वयं) दो वस्तुयों (अप्रतिमं) अनुपम उपमा रहित (प्रतीमः) जानते हैं; हे भगवन् ! (तब) तेरा (एतत्) यह (यथास्थितार्थप्रथनं) यथास्थित

पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार, अर्थात् यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार जैसा तैनेकरा है, ऐसा जगत्में कोईभी नही कर सक्ता है, इसवास्ते तेरा कथन हम अनुपम जानते हैं. और (परेषां) अन्योंका (अस्थाननिर्बंधरसं) अस्थाननिर्बंधरस, अर्थात् अन्योंने असमंजसपदार्थोंके स्वरूपकथनरूप गोले गिरडाये हैं, वेभी उपमारहित हैं, तिनोंके विना ऐसा असमंजसकथन अन्य कोईभी नही कर सक्ता है. ॥ २२ ॥

अथ स्तुतिकार अज्ञानियोंके प्रतिबोध करनेमें अपनी असमर्थता कहते हैं.—

अनाद्यविद्योपनिषन्निषण्णै
र्विशृंखलैश्चापलमाचरद्भिः ।
अमूढलक्ष्योपि पराक्रियेयत्
त्वत्किंकरः किं करवाणि देव ॥ २३ ॥

व्याख्याः— अनादि अविद्या, अर्थात् मिथ्यात्व अज्ञानरूप उपनिषद्रहस्यमें तत्पर हुयोंने, और विशृंखलोंने, अर्थात् बिना लगाम स्वच्छंदाचारी प्रमाणिकपणारहितोंने, और चपलता अर्थात् वाग्जालकी चपलताके आचरण करतेहुयोंने, इन पूर्वोक्त विशेषणोंविशिष्ट महाअज्ञानीपुरुषोंने जेकर तेरे अमूढ लक्ष्यकोंभी-जिसके उपदेशादि सर्व कर्म निष्फल न होवें तिसकों अमूढलक्ष्य कहते हैं, अर्थात् सर्वज्ञ ऐसे तेरे अमूढलक्ष्यकोंभी, जेकर पूर्वोक्त पुरुष खंडन करे-तिरस्कार करे, जैंसे कोई जन्मांध सूर्यके प्रकाशकों पराकरण करे, न माने, तो तिसकों निर्मल नेत्रवाला पुरुष क्या करे? ऐसे ही अज्ञानी तेरा तिरस्कार करे, तो हे देव! स्वस्वरूपमें क्रीडा करनेवाले सर्वज्ञ वीतराग! तेरा किंकर मैं हेमचंद्रसूरि, क्या करूं ? कुछभी तिनकेतांई

नही कर सकता हूं. जैसें जन्मके अंधकों अंजनवैद्य कुछ नही कर सकता है ॥ २३ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतकी देशना भूमिकी स्तुति करते हैं—

विमुक्तवैरव्यसनानुबंधः
श्रयंतियां शाश्वतवैरिणोऽपि ।
परैरगम्यां तव योगिनाथ तां
देशनाभूमिमुपाश्रयेऽहम् ॥ २४ ॥

व्याख्याः— हे योगिनाथ ! (यां) जिस तेरी देशनाभूमिकों (शाश्वतवैरिणः-अपि) शाश्वतवैरीभी, अर्थात् जिनका जातिके स्वभावसें ही निरंतर वैरानुबंध चला आता है, जैसें बिल्लि मूषकका, श्वान बिल्लिका, वृक अजाका, इत्यादि; वेभी सर्व, (विमुक्तवैर-व्यसनानुबंधाः) स्वजातिका शाश्वत वैर रूपव्यसनके अनुबंधसे विमुक्त रहित हुए थके (श्रयंति) आश्रित होते हैं। यह भगवंतका अतिशय है कि, शाश्वतवैरीभी भगवान्की देशनाभूमि समवसरणमें जब आते हैं, तब परस्पर वैर छोडके परममैत्रीभावसें एकत्र बैठते हैं; और जो (परैः) परवादीयोंने (अगम्यां) अगम्य है, अर्थात् परवादी जिस देशनाभूमिका स्वरूप नही जान सक्ते हैं मिथ्यात्व अज्ञानरूप पटलोंसें अंधे होनेसें; (तां) तिस (तव) तेरी (देशनाभूमिं) देशनाभूमिकों (अहम्) मैं (उपाश्रये) उपाश्रित करता हूं-आश्रित होताहूं। जिससें मेराभी सर्वजीवोंके साथ वैरानुबंधरूप व्यसन छुट जावे. ॥ २४ ॥

अथस्तुतिकार परदेवोंका साम्राज्य वृथा सिद्ध करते हैं।

मदेन मानेन मनोभवेन
क्रोधेन लोभेन च संमदेन ।

पराजितानां प्रसभं सुराणां
वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥ २५ ॥

व्याख्याः— (परेषाम्-सुराणाम्) परदेवताओंका, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिकोंका (साम्राज्यरुजा) लोकपितामहपणा, जगत्कर्त्तापणा, हंसवाहन, कमलासन, यज्ञोपवीत, कमंडलु, चतुर्मुख, सावित्रीपति, विशिष्टादि दश पुत्रोंवाला, वेदोंका कहनेवाला, चार वर्णका उत्पन्न करनेवाला, वर शाप देने समर्थ, सतोगुणरूप, इत्यादि ब्रह्माजीका साम्राज्य-चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, शारंग, धनुष्, वनमालाका धारनेवाला, ईश्वर, लक्ष्मी, राधिका, रुक्मिणी आदिका पति, सोलां सहस्र गोपयिोंके साथ क्रीडा करनी, अनेक रूपका करना, बत्रीस सहस्र राणियोंका स्वामी, त्रिखंडाधिप, वामन नरसिंह रामकृष्णादिका रूप धारना, कंस, वाली, रावणादिक वध करना सहस्रों पुत्रोंका पिता, रजोगुणरूप, सृष्टिका पालनकर्ता, भक्तसाहायक, घटघटमें व्यापक होना, इत्यादि विष्णुका साम्राज्य और जगत्प्रलय करना, वृषभवाहन, पंचमुख, चंद्रमौलि, त्रिनेत्र, कैलासवासी, सर्वसें अधिक कामी, स्त्रीके अत्यंत स्नेहवाला, सदा स्त्री पार्वतीकों अर्द्धांगमें रखनेवाला, अत्यंत भोला, त्रिभुवनका ईश्वर इत्यादि शिवका साम्राज्य- इसीतरे सर्वलौकिक देवोंका साम्राज्य समज लेना. ऐसा पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग परतीर्थनाथोंका (वृथाएव) वृथाही है। कैसे परतीर्थनाथोंका? (मदेन) अष्टप्रकारके मद (मानेन) अभिमान-अहंकार (मनोभवेन) काम (क्रोधेन) क्रोध शत्रुके मारणरूप वा शापदानरूप (लोभेन) लोभ, स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, शस्त्र, स्थानादिग्रहणरूप, (च) शब्दसे मायाकपटादि और (संमदेन) हर्ष खुशी इनों करके (प्रसभं) यथा स्यात्तथा अर्थात् हठ करके अपने बडे सामर्थ्य करके (पराजितानां) जे पराजित हैं, अर्थात् पूर्वोक्त दुषणों करके जे संयुक्त हैं, तिनोंका.

क्योंकि, पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग आत्माकों मलिन करने और दुःख देनेवाला है, इस वास्ते वृथाही है ॥ २५ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार असत्वादी और पंडितजनोंके लक्षण कहते है।

स्वकण्ठपीठे कठिनं कुठारं
परेकिरन्तः प्रलपन्तु किंचित् ।
मनीषिणां तु त्वयि वीतराग !
न रागमात्रेण मनोऽनुरक्तम् ।। २६ ।।

व्याख्याः— (परे) परवादी जे हैं, वे (स्वकण्ठपीठे) अपने कंठपीठमें (कठिनं) कठिन-तीक्ष्ण (कुठारं) कुठार-कुहाडा (किरन्तः) क्षेपन करते हुए (किंचित्) कुछक (प्रलपन्तु) प्रलपन करो, अर्थात् परवादी अप्रामाणिक युक्तिबाधित किंचित् तत्त्वके स्वरूपकथनरूप कठिन कुठार-कुहाडा अपने कंठपीठमें क्षेपन करो-मारो, यद्वा तद्वा बोलो, सत्मार्गके अनभिज्ञ होनेसें, अपने आत्माकी हानि करो, परंतु हे वीतराग ! (मनीषिणां तु) मनीषि-पंडित-सद्बुधिमानोंका तो (मनः) मन-अंतःकरण (त्वयि) तेरे विषे (रागमात्रेण) रागमात्र करके (न) नहीं (अनुरक्तं) रक्त है, किंतु युक्तिशास्त्रके अविरोधि तेरे कथनके होनेसें तेरे विषे पंडितजनोंका मन अनुरक्त है ॥ २६ ॥

अथाग्रे जे पुरुष अपनेकों माध्यस्थ मानते हैं, परंतु वेभी निश्चय मत्सरी हैं, तिनका स्वरूप कथन करते हैं।

सुनिश्चितं मत्सरिणो जनस्य
न नाथमुद्रामतिशेरते ते ।

माध्यस्थमास्थाय परीक्षकाये
मणौ च काचे च समानुबन्धाः ॥ २७ ॥

व्याख्याः— हे नाथ! (सुनिश्चितं) हमारे निश्चित करा हुआ वर्त्ते है कि (ते) वे जन (मत्सरिणः) मत्सरी (जनस्य) पुरुषकी (मुद्रां) मुद्राकों (न) नहीं (अतिशेरते) उल्लंघन करते हैं, अर्थात् ऐसे जनभी मत्सरियोंकी पंक्तिमेंही निश्चित करे हुए हैं; कैसे हैं वे जन ? (ये) जे (परीक्षकाः) परीक्षक होके और (माध्यस्थ्यम्—आस्थाय) माध्यस्थपणेकों धारण करके (मणौ) मणिमें (च) और (काचे) काचमें (समानुबन्धाः) सम अनुबंधवाले हैं।

भावार्थः— माध्यस्थपणेकों धारण करके, जे पुरुष अपने आपकों परीक्षक मानते हैं कि, हम पक्षपातरहित सच्चे परीक्षक हैं; परंतु काचके टुकडेंकों, और चंद्रकांतादि मणियोंकों मोलमें, वा गुणोंमें समान मानते हैं, वे परीक्षक नहीं हैं, किंतु वे भी मत्सरि पुरुषकी मुद्रावालेही हैं। ऐसेंही जिनोंने माध्यस्थपणा और परीक्षक अपने आपकों माने हैं, फेर काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, मैथुनादिरहित सर्वज्ञ वीतरागकों, और पूर्वोक्त कामादिसहित अज्ञानी सरागीकों एक समान मानते हैं, इस वास्ते वे परीक्षक नहीं, किंतु वेभी मत्सरी ही हैं ॥ २७ ॥

अथ स्तुतिकार प्रतिवादीयोंसमक्ष अवघोषणा करते हैं।

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणा
मुदारघोषामवघोषणां ब्रुवे ।
न वीतरागात्परमस्ति दैवतं
न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः ॥ २८ ॥

व्याख्याः— मैं श्री हेमचंद्रसूरि (प्रतिपक्षसाक्षिणां) प्रतिपक्ष-साक्षियोंके (समक्षं) समक्ष-प्रत्यक्ष (इमां) यह जो आगे कहेंगे तिस (उदारघोषाम्) मधुर शब्दोंवाली (अवघोषणाम्) अवघोषणा, लोकोंके जनावने वास्ते उच्च शब्द करके जो बोलना तिसका नाम अवघोषणा कहेत हैं, तिस अवघोषणाकों (ब्रुवे) बोलता हूं-करता हूं, सोही दिखाते हैं, (वीतरागात्) वीतरागसें (परं) परे-कोई (दैवतं) सत्यधर्मका आदि उपदेष्टा (न) नहीं (अस्ति) है, (च) और (अनेकांत-ऋते) अनेकांत अर्थात् स्याद्वादविना कोइ (नय-स्थितिः-अपि) नयस्थितिभी (न) नहीं है; अर्थात् स्याद्वादके बिना पदार्थके स्वरूपके कथन करनेरूप जो नयस्थिति है सोभी नहीं है। स्यात् पदके चिन्हविना किसीभी नित्यानित्यादिनयके कथनकी सिद्धि न होनेसें ॥ २८ ॥

अथ स्तुतिकार अपने आपकों अपक्षपाती सिद्ध करते हैं।

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो
न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु ।
यथावदाप्तत्वपरिक्षया तु
त्वामेव वीरं प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥ २९ ॥

व्याख्याः— हे वीर! (श्रद्धया-एव) श्रद्धा मात्र करकेही, अर्थात् श्री महावीरके बिना अन्य किसी परवादीके मतके देवकों अपना प्रभु ईश्वर सत्योपदेष्टा नहीं मानना, ऐसी श्रद्धा, मनकी दृढता करकेही, (त्वयि) तेरेविषे हमारा (पक्षपातः) पक्षपात (न) नहीं है, और (द्वेषमात्रात्) द्वेषमात्रसें (परेषु) परमतके देव हरिहरब्रह्मादकिोंमें (अरुचिः) अरुचिअप्रीति (न) नहीं है, परंतु (यथावदाप्तत्वपरीक्षया-तु) यथावत् आप्तपणेकी परीक्षा करके ही, हे वीर! वर्द्धमान! हम (त्वां-एव) तुजही (प्रभुम्) प्रभुकों (आश्रिताः स्मः) आश्रित हुए

हैं। आप्तत्वकी परीक्षा आप्तके कथनसें और आप्तके चरितसें सिद्ध होती है, सो हमने तेरे कथनकी परीक्षा करी है, परंतु तेरे वचन हमने प्रमाणबाधित वा पूर्वापर विरोधि नहीं देखेहैं, और तेरा चरित देखा, सोभी आप्तत्वके योग्यही देखा है, और तेरी प्रतिमाद्वारा तेरी मुद्राभी निर्दोष सिद्ध होती है इन तीनों परीक्षायोंके करनेसें तेरेमें निर्दोष आप्तपणा सिद्ध होती है, इस वास्ते हमने तेरेकों प्रभु माना है। और अन्यदेवोंमें ये तिनो शुद्ध निर्दोष परीक्षायों सिद्ध नहीं होती हैं, इस वास्ते तीन देवोंकों हम अपना प्रभु नहीं मानते हैं। नतु द्वेष वा अरुचिसें । "यदवादिलोकतत्त्वनिर्णये श्री हरिभद्रसूरीपादैः ।

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु । युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः" इति ॥ २९ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतकी वाणीकी स्तुति करते हैं।

तमः स्पृशामप्रतिभासभाजं
भवन्तमप्याशु विविन्दते याः ।
महेम चन्द्रांशुदृशावदाता
स्ता-स्तर्कपुण्या जगदीशवाचः ॥ ३० ॥

व्याख्याः— हे जगदीश! भगवन् ! (याः) जे वाचायों तेरी वाणीयों (तमस्पृशाम्) अज्ञानरूप अंधकारके स्पर्शनेवालोंके (अप्रतिभासभाजम्) अप्रतिभासभाज अर्थात् अज्ञानी जिसकों नहीं जानसक्ते हैं, ऐसे (भवन्तम्-अपि) तुजकोंभी-तेरेकोंभी (आशु) शीघ्र (विविन्दते) प्रगट करतीयां है-जनातीयां है (ताः) तिन (चन्द्रांशुदृशावदाताः) चंद्रकी किरणोंकीतरें दृशा-ज्ञान करके अवदाता-श्वेत और (तर्कपुण्याः) तर्क करके पवित्र सम्मत (वाचः) वाणीयांकों (महेम) हम पूजते हैं ॥ ३० ॥

अथ स्तुतिकार नामके पक्षपातसें रहित होकर, गुणविशिष्ट भगवंतकों नमस्कार करते हैं।

यत्र तत्र समये यथा तथा
योऽसि सोस्यभिधया यथा तथा ।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवा
नेक एव भगवन्नमोऽस्तुते ॥ ३१ ॥

व्याख्याः— (यत्र तत्र समये) जिसतिस मतके शास्त्रमें (यथातथा) जिस तिस प्रकारकरके (यया तया अभिधया) जिस तिस नाम करके (यः) जो तूं (असि) है (सः) सोही (असि) तूं है, परं (चेत्) यदि जेकर (वीतदोषकलुषः) दूर होगए हैं द्वेष राग मोह मलिनतादि दूषण, तो, (भवान्-एक-एव) सर्व शास्त्रोंमें तूं जिस नामसें प्रसिद्ध है, सो सर्व जगें तूं एकही है, इस वास्ते हे भगवन्! (ते) तेरे तांइ (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥ ३१ ॥

अथ स्तुतिकार स्तुतिकी समाप्तिमें स्तुतिका स्वरूप कहते हैं।

इदं श्रद्धामात्रं तदथ परनिन्दां मृदुधियो
विगाहन्तां हन्त प्रकृतिपरवादव्यसनिनः ।
अरक्तद्विष्टानां जिनवरपरीक्षाक्षमधिया-
मयंतत्त्वालोकः स्तुतिमयमुपाधिं विधृतवान् ॥ ३२ ॥

व्याख्याः— (मृदुधियः) मृदु कोमल विशेषबोधरहित जिनकी कोमल बुद्धि है, वे पुरुष तो (इदम्) इस स्तोत्रकों (श्रद्धामात्रं) श्रद्धामात्र, अर्थात् जिनमतकी हमकों श्रद्धा है, इसवास्ते हम इसको सत्य करकेही मानेंगे, ऐसे जन तो इस स्तोत्रकों श्रद्धामात्र (विगाहन्तां) अवगाहन करो-मानो, (हन्त) इति कोमलामंत्रणे (तत्-अथ)

अथ सोही स्तोत्र (प्रकृतिपरवादव्यसनिनः) स्वभावही जिनोंका परके कथनमें वाद करनेका है, अर्थात् अपने माने देव और तिनके कथनमें जिनकों आग्रह है कि, हमने तो यही मानना है, अन्य नहीं, ऐसे व्यसनी पुरुष इस स्तोत्रकों (परनिन्दां) परनिंदारूप अवगाहन करो; स्तुतिकारने परदेवोंकी निंदारूप यह स्तोत्र रचा है, ऐसें मानो, अपने माननेका कदाग्रह होनोसें, परंतु हे जिनवर! (परीक्षाक्षमाधियाम्) परीक्षा करनेमें समर्थ बुद्धिवाले (अरक्तद्विष्टानां) रागद्वेषरहितोंकों, अर्थात् किसी मतमें जिनोंका राग पक्षपात नहीं है, और किसी मतमें जिनोंकों द्वेषसें अरुचि नहीं है, ऐसे परीक्षापूर्वक सत् असत् वस्तुका प्रमाणसें निर्णय करनेवालोंकों (अयं) यह (तत्त्वालोकः) तत्त्व-प्रकाशक स्तव-स्तोत्र (स्तुतिमयं-उपाधिं) स्तुतिमय उपाधिकों-स्तुतिमय धर्मचिंताकों (विधृतवान्) धारण करता है. ॥ ३२ ॥
इतिश्रीहेमचंद्रसूरिविरचितमयोगव्यवच्छेदिकाद्वात्रिंशिकाख्यं

श्री महावीर स्वामि स्तोत्रं बालावबोधसहितं समाप्तम् ॥

तत्ससमाप्तौ च समाप्तोयं तृतीयः स्तम्भः ॥

श्रीमत्तपोगणेशेन विजयानंदसूरिणा ॥
कृतो बालावबोधोऽयं परोपकृतिहेतवे ॥ १ ॥

इन्दुबाणाङ्कचन्द्राब्दे (१९५०) माघमासे सिते दले ।
पञ्चम्यां च तिथौ जीवघस्रेपूर्तिमगात्तथा ॥ २ ॥

इतिश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे
अयोगव्यवच्छेदकवर्णनोनाम तृतीयः स्तंभः ॥ ३ ॥

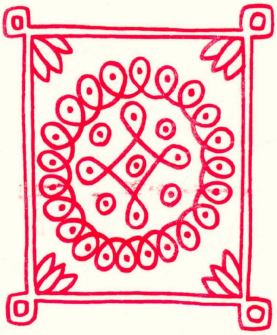

KIRIT GRAPHICS - 079-25352602